इंसानियत ज़िन्दा है

श्री अमरदीप जौली द्वारा लिखित
मूल पंजाबी पुस्तक का हिन्दी रूपांतरण
अनुवादकः शशिकान्त लोमश (जालंधर)

प्रकाशक :
अपना साहित्य, पीली कोठी, गोपाल नगर, जालन्धर शहर

मूल्य - 60 रुपये

डिज़ाईन
करनदीप सिंह, +91 70871 67064

प्रिंटर
कालिया आर्टस ऐंड प्रिंटर, मंडी रोड, जालन्धर शहर।

I

भूमिका

दुनिया के इतिहास में कुछ घटनाएं अपना स्थायी प्रभाव छोड़ जाती हैं। इतिहास सदैव विजेताओं द्वारा ही लिखा जाता रहा है। वर्ष 1984 के अक्तूबर मास के अंतिम दिन देश की प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी की उनके ही दो अंगरक्षकों द्वारा हत्या कर दी गई। ये दोनों अंगरक्षक सिक्ख थे। कांग्रेस पार्टी की सरकार द्वारा स्वयं ही वर्ष 1982 से पंजाब में एक राजसी आंदोलन को समाप्त करने के लिए उसे धार्मिक रंगत देकर इसे धर्मयुद्ध में परिवर्तित करवा दिया गया था। जब कोई शासन तंत्र विधिसम्मत (कानून के अनुसार) कार्य करने में समर्थ न हो तो ऐसा तंत्र कानून को अपने ढंग से तोड़ता है और फिर उसकी आवश्यक प्रतिक्रिया होना भी स्वाभाविक होती है। झूठे पुलिस मुकाबलों से आरम्भ हुआ यह खेल मार-काट का स्वरूप धारण कर गया। कितने ही बेदोश नागरिक पुलिस या खाड़कुओं (आतंकवादियों) द्वारा मारे गए, क्यूँ इसका कोई आधिकारिक रिकार्ड कहीं भी, किसी के भी पास नहीं है ? लोग आज भी अपने ऐसे सम्बंधियों की तलाश में इधर-उधर भटकते मिलते हैं। ऐसे समय में साम्प्रदायिक विद्वेश फैलाने में कौन उत्तरदायी न था ? अर्थात सभी उत्तरदायी रहे। लोगों के सामने इसकी सच्चाई आना अभी बाकी है। राजसी स्वार्थ हेतु यह बात किसके माथे मढ़ी जा रही है और क्यों ? इसकी पड़ताल भी की जानी चाहिए थी।

31 अक्तूबर 1984 को देश की राजधानी दिल्ली से आरम्भ हुआ सिक्खों का कत्ले-आम शीघ्र ही झारखण्ड, उत्तराखण्ड, ओडीशा, बिहार, पश्चिमी बंगाल और हिमाचल प्रदेश जैसे प्रांतों में फैल गया। तब देश का भावी प्रधानमंत्री (श्री राजीव गांधी) का एक ब्यान आया था... ''जब बड़ा पेड़ हिलता है, तो धरती कांपती है। .. और मुझे पगड़ी वाला दिखाई नहीं देना चाहिए।'' तब देश के राष्ट्रपति भी अपना संवैधानिक दायित्व पूरा करने में असफ़ल रहे। इस सम्पूर्ण घटनाक्रम में मानवता हार रही और हैवानियत जीत

रही प्रतीत होती थी। इस पर भी मानवता अभी जीवित थी, सभी लोग इस कत्लो-गारत में सम्मिलित न हुए। कुछ बहादुर तो अपनी जान और जायदाद की परवाह न करते हुए सिक्खों को बचाने के लिए आगे भी आए। उन्होंने उन्हें अपने घरों में आश्रय दिया और कातिलों व अपराधिक तत्वों का सामना भी किया।

मानवता की ऐसी अनेकों कहानियां या वृतांत होंगे, जिनको संकलित करना एक बड़ा कार्य होगा। परंतु इस पुस्तक के ज्ञानवान व संवेदनशील लेखक ने अनेक परिवारों की आप-बीती एकत्रित कर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कार्यकर्ताओं द्वारा इस वीभत्स कत्ले-आम में बचाव की भूमिका को उजाकर किया है। संघ की इसी भूमिका से प्रेरित हो सरदार अवतार सिंह शास्त्री ने तो अपना जीवन ही इस संस्था को समर्पित कर दिया।

करतार के भेजे गए रक्षक, परीक्षा हो गई, अपने कौन ?, बचाने वाला बड़ा, फरिश्ते संघी, दीवार बन खड़े संघी, अतीत की परछाईयां, कोई मनोकल्पित कहानियां नहीं, अपितु सत्य उजागर करते तथ्य हैं। जो अपने जीवन की परवाह न करते हुए दूसरों की रक्षा, सेवा, संभाल की मुँह बोलती तस्वीर हैं।

लेखक ने आज भी जीवित ऐसे अधिकतर लोगों से चर्चा करने के उपरांत यह पुस्तक तैयार करने का अमूल्य उपाय किया गया है। भावी पीढ़ियों के समक्ष सत्य प्रस्तुत करने का यह एकमात्र ढंग है। वाहेगुरु इस कलम को और महान सत्य प्रकट करने की शक्ति प्रदान करें। इसी अरदास के साथ मैं लेखक को अपनी ओर से बधाई देता हूँ।

इकबाल सिंह लालपुरा
अध्यक्ष, राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग,
भारत सरकार।

दो शब्द

जब से मानव सभ्यता अस्तित्व में आई है, तब से ही उसे, भिन्न-भिन्न काल में भिन्न-भिन्न मुश्किलों, कठिनाइयों, विपत्तियों, मार-काट, कत्लो-गारत और प्राकृतिक आपदायों का सामना अक्सर ही करना पड़ता रहा है। यूँ तो इन समस्यायों से निपटने का दायित्व शासक वर्ग का होता है, लेकिन जब देश में विषैली सोच रखने वाले जगदीश टाइटलर और सज्जन कुमार जैसे नेता हों तो प्रजा न्याय मांगे भी तो किससे ? 1984 में जो घटनाचक्र चला, देश की प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी की हत्या के बाद सिक्खों का जो कत्ले-आम हुआ, उसको स्मरण करते हुए भी दिल में एक दर्दभरी चीत्कार सी होती है। तब यह कोई दंगा न था, अपितु वह सिक्खों के अस्तित्व को मिटा देने का अपराध था। 'सरदार का बेटा, गद्दार का बेटा' जैसे भड़काऊ, उकसाने वाले नारे लगाते हुए वहिशी दरिंदे सिक्ख परिवारों के नन्हे-मुन्ने बच्चों से लेकर वृद्धों को कत्ल कर रहे थे, हत्यायों का खुला तांडव हुआ न केवल बेटियों की अस्मिता लूटी गई, अपितु बाद में उन्हें दर्दभरे ढंग से मारा गया। ऐसे समय पर प्रत्यक्षदर्शियों को दंगा करने वालों तथा शासकों में कहीं भी मानवता दृष्टिगोचर न हुई। शासक वर्ग राजधर्म भूल चुका था। पंरतु हमारे देश की विशेषता रही है कि समाजसेवी संस्थाओं ने सदैव ही पहल करते हुए ऐसी कठिनाईयों का सामना करने, उनसे निपटने के बड़े उपाय, प्रयास किए हैं।

प्राचीन भारतीय सभ्यता, संस्कृति, संस्कार और समरसता सरीखे उच्चादर्शों के प्रति समर्पित संस्था आर.एस.एस. (राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ), जिसकी आधारशिला डा. केशवराव बलिराम हेडगेवार ने नागपुर में 05 छोटे छोटे बच्चों को साथ लेकर नागपुर में ई. सन् 1925 में रखी, जो आज समाज सेवा के क्षेत्र में में विश्व का सब से बड़ा गैर राजनीतिक संगठन है। कुछ लोग संघ को हिंदू कट्टरवादी और मुस्लिम विरोधी जमात कह कर इसकी निंदा भी करते हैं। परंतु संघ इन सभी आरोपों को दरकिनार कर अपनी विचारधारा को लेकर

सदैव आगे बढ़ता रहा है। भारतीय सभ्यता के अनुसार भावी पीढ़ी को संस्कारित करने का कार्य निरंतर करता रहा है। अपने गुरुओं, योद्धाओं, शूरवीरों और महापुरुषों की जीवनगाथाओं और आदर्शों पर चलने की प्रेरणा देता आ रहा है। संघ परस्पर एकता, ऊँच-नीच, जाति-पाति, अमीर-गरीब के भेद-भाव को छोड़ कर आपसी भाईचारा, एकता, देश-प्रेम, भक्ति जैसे उच्च विचारों से ओत-प्रोत उद्देश्य को लेकर समाज में एकरूपता और समरसता का झण्डाबरदार रहा है। यही उसका मानवतावादी सिद्धांत है। जब भी देश विरोधी अथवा समाज विरोधी लोगों ने हिंदुस्तान की संस्कृति पर आक्रमण, आघात करने की कोशिश की तो इस राष्ट्रवादी संगठन से जुड़े लोगों ने सदैव ही आगे आकर राष्ट्र की रक्षा करते हुए समाज के प्रत्येक वर्ग की सेवा और सहायता की।

विचाराधीन पुस्तक, ''इंसानियत ज़िंदा है'' के लेखक ने 1984 के सिक्ख विरोधी कत्ले-आम में पीड़ित लोगों के विवरण एकत्रित कर एक ऐतिहासिक और सराहनीय कार्य किया है। इस दौरान राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से सम्बन्धित लोगों द्वारा अपने जीवन को ज़ोखिम में डालकर कातिलों से लोहा लेते हुए जिस प्रकार मासूम लोगों को बचाया और छुड़वाया गया, वो विवरण पढ़कर आंखें नम हो जाती हैं।

तत्कालीन सरकार ने जितनी योजनाबद्ध और क्रूरता से यह हत्याएं करवाईं, मानव इतिहास में इस प्रकार के कलंकित उदाहरण कहीं नहीं मिलते हैं। इस पुस्तक में दिए गए विवरणों से ज्ञात होता है कि भले ही वह देवबंद (उत्तरप्रदेश) के 80 वर्षीय सरवण सिंह हों, कुल्लू (हिमाचल प्रदेश) के शहर भुंतर का अमरजीत सिंह, फरीदाबाद (हरियाणा) की श्रीमती चरणजीत कौर हों, कटक (ओडीशा) के अवतार सिंह, तिलक विहार (नई दिल्ली) के सरदार सुरजीत सिंह और इनके जैसे ही सैंकड़े, हज़ारों लोगों के साथ हुए दर्दनाक मंज़र को पढ़ते हुए, सुनते हुए शरीर के रोंगटे खड़े हो जाते हैं ..और सिर शर्म से झुक रहा प्रतीत होता है। इन्हीं दंगों के पीड़ित छत्तीसगढ़ के निवासी राजिंद्र सिंह बताते हैं कि यदि वे आज जीवित हैं तो वह संघ से जुड़े लोगों की बदौलत ही है। वह बताते हैं कि इन हत्याओं के उपरांत मैं ने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की कार्यशैली की भली प्रकार से विवेचना की तो मैंने संघ से जुड़ने का निश्चय किया और

आज 60 वर्ष की आयु में भी बाकायदा समाज सेवा के कामों में भाग लेता हूँ।

मैं इस पुस्तक के लेखक अमरदीप जौली को बधाई देता हूँ कि जिस लगन और कड़े श्रम से उन्होंने देश के विभिन्न भागों में जाकर इस प्रकार से यह खोज से भरपूर विवरण एकत्रित किए, ऐसा सौभाग्य किसी किसी व्यक्ति के भाग में ही आता है। प्रबुद्ध पाठकों से अपील है कि वह एक बार इस पुस्तक का अध्ययन अवश्य करें और इस पुस्तक को उन लोगों तक भी पहुँचाने का कष्ट करें जो रा.स्व. संघ को सिक्ख विरोधी बता कर अपने राजनीतिक हितों, स्वार्थों की पूर्ति करते हैं। यह पुस्तक उन लोगों तक भी अवश्य पहुँचनी चाहिए जो संघ के धुर विरोधी हैं और समय-समय पर संघ पर प्रतिबंध लगाने की माँग करते रहते हैं। जिन्होंने महात्मा गांधी की हत्या का आरोप लगाकर 1948 और 1975 में आपातकाल लगा कर मुझ जैसे व्यक्तियों को बिना किसी अपराध के झूठे केस बनाकर कई कई महीनों तक जेल की सलाखों के पीछे बंद कर अनेकों परिवारों को मुश्किलें, कठिनाइयां सहन करने के लिए विवश किया। यह पुस्तक ऐसे लोगों की आँखें खोल देगी और संघ के प्रति अब तक किए गए कुप्रचार, झूठों को दूर कर देगी, केवल तभी यह प्रयास सार्थक हुआ माना जाएगा।

प्रिं. सेवा सिंह चावला

(अध्यक्ष, श्री गुरू गोबिंद सिंघ ट्रस्ट, कोटकपूरा)

निवास - 168, गुरू नानक कालोनी,

फरीदकोट

98145-05257, 99888-56257

स. हरविंदर सिंह फुलका

''पूर्व प्रधानमंत्री स्व. अटल बिहारी वाजपेयी उन दिनों नई दिल्ली लोकसभा क्षेत्र से संसदीय सदस्य थे। 01 नवम्बर 1984 से जब दिल्ली में दंगे हो रहे थे, उस दिन उनका स्वास्थ्य ठीक न था, जिस कारण से वह अपने घर पर ही थे। उनके घर के बिलकुल सामने सड़क की दूसरी ओर एक टैक्सी स्टैंड था जहाँ बहुत से सिक्ख टैक्सी ड्राइवर उपस्थित थे। आक्रामक भीड़ ने उन पर हमला कर दिया। उनका शोर सुनकर अटल जी तत्काल बाहर आए। उन्होंने दंगाइयों से उन सिक्ख ड्राइवरों की जान बचाई और फिर उन सिख ड्राइवरों को अपने घर में शरण दी।''

नवम्बर 1984 में कांग्रेस सरकार ने संसद में दावा किया कि दिल्ली दंगे में केवल 600 सिक्खों की ही मौत हुई है। परन्तु उस समय सांसद अटल बिहारी वाजपेयी ने डटकर सरकार का विरोध किया तथा सरकार और देश के समक्ष दंगों में मारे गए सिक्खों के वास्तविक आंकड़े जारी किए। उन्होंने दिल्ली दंगों में मारे गए 2700 सिक्खों की सूची जारी की। इसे भाजपा नेता मदन लाल खुराणा ने स्वयं राहत शिविरों में जाकर और जिन इलाकों में दंगे हुए थे, उन इलाकों में जाकर एकत्रित किया था तथा श्री अटल बिहारी वाजपेयी जी ने 16 नवम्बर 1984 को संसद के समक्ष पेश किया था। ये सही, वास्तविक आंकड़े संसद में रखे जाने पर कांग्रेस ने वाजपेयी जी को देशद्रोही तक कहा था। इस पर वाजपेयी जी ने कहा, ''मैं देश को बचाना चाहता हूँ, मुझे कोई अंतर नहीं पड़ता कि मुझे कोई क्या कहता है।'' बाद में आहुजा समिति ने भी माना कि दिल्ली दंगों में 2733 सिक्ख मारे गए थे।

बाद में अटल बिहारी वाजपेयी देश के प्रधानमंत्री बन गए। मैं तब भी दंगा पीड़ितों की लड़ाई लड़ रहा था। मैं उन पीड़ितों को न्याय दिलाने के लिए अटल बिहारी वाजपेयी जी से मिला। उन्होंने सुझाव मांगा कि कैसे इन दंगा पीड़ित सिक्खों और इनके परिवारों को न्याय मिल सकता है। मैंने उन्हें बताया कि

कांग्रेस ने अब तक अपने नेताओं के विरुद्ध चल रहे अधिकतर मामलों को दबा दिया है जिसकी जाँच के लिए फिर से आयोग बनना चाहिए और दोषियों के विरुद्ध कार्रवाई होनी चाहिए। उन्होंने इस सुझाव को मानते हुए सन् 2000 में जस्टिस जी.टी. नानावती आयोग बनाया तथा इस आयोग ने बन्द किए गए मामलों की फिर से जाँच आरम्भ की, रिपोर्ट को अटल बिहारी वाजपेयी जी द्वारा सदन में रखा गया। इस सूची ने नानावटी आयोग का भी जाँच में सहयोग किया।''

हरविंदर सिंह फुलका,

(सर्वोच्च न्यायालय में वरिष्ठ अधिवक्ता)

द इंडियन एक्स्प्रेस, दिनांक 19.08.2018

लेखकीय निवेदन

पूर्व अमेरिकी राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन ने एक बार कहा था कि लगभग प्रत्येक व्यक्ति विपरीत परिस्थितियों का सामना कर सकता है, लेकिन यदि आप किसी व्यक्ति का वास्तविक चरित्र जानना चाहते हैं तो उसके हाथों में सत्ता दे दो। जी हाँ, यह बात बहुत ही सटीक प्रतीत होती है। बस, आवश्यकता है तो निकटवर्ती इतिहास को झांकने की और निष्पक्षता के तराज़ू में तौलने की और यह बात केवल किसी एक व्यक्ति विशेष पर ही नहीं अपितु संस्थाओं और संगठनों पर भी लागू होती है क्योंकि एक ही विचार के लोग मिलकर ही किसी संगठन अथवा दल का सृजन करते हैं। फिर यही विचार उस संगठन का विचार और चरित्र बन जाता है।

15 अगस्त 1947 को हमारा देश स्वतंत्र हो गया। पण्डित जवाहर लाल नेहरु स्वतंत्र भारत के पहले प्रधानमंत्री बने। देश की स्वतंत्रता के लिए जिस कांग्रेस पार्टी के मंच से लाखों भारतीयों ने संघर्ष किया। उसी पार्टी का नेतृत्व अब पं. जवाहर लाल नेहरु और उनके साथियों के हाथ में था। निश्चित ही पार्टी के चिंतन और दिशा पर भी उन्हीं का प्रभाव था। इसी दौरान 30 जनवरी, 1948 को एक दुखदायी घटना हुई। नत्थूराम गौडसे और उनके साथियों द्वारा महात्मा गांधी की हत्या कर दी जाती है। लेकिन इस दु:खद घटना के बाद बिना कोई जाँच-पड़ताल किए और प्रमाण के बिना ही प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरु ने यह कहना आरम्भ कर दिया कि संघ गांधी जी का हत्यारा है। आकाशवाणी और समाचार पत्रों ने प्रधानमंत्री के ऐसे भड़काऊ भाषण को प्रचारित किया और इसके बाद देश भर में ''खून का बदला खून से लेंगे'' जैसे भड़काऊ नारे गूँजने लगे। नत्थूराम गौडसे महाराष्ट्रीयन ब्राहमण था, इसलिए महाराष्ट्र में संघ के साथ-साथ ब्राह्मणों के विरुद्ध भी हिंसा आरम्भ हो गई। ''संघ का शिकार'' नाम का अभियान चलाया गया जिसके अंतर्गत संघ के कार्यकर्ताओं के मकान, दुकान लूट लिए गए या अग्नि की भेंट कर दिए गए।

अनेकों को तो जीवित ही आग में झोंक दिया गया। अंग्रेज़ों के शासनकाल में जिस पार्टी का मूलमंत्र ''अहिंसा'' था, सत्ता का केन्द्र बनते ही न केवल बदल ही गया, अपितु उसी दल द्वारा अपने ही देशवासियों को गद्दार का लेबल लगाकर यातनाएं देते हुए मारा गया। यह केवल यहीं तक सीमित न रहा, देश के भाग्य में दूसरी बार ऐसा ही कत्ले-आम देखना लिखा था। बस इस बार गांधी कोई और था परंतु क्रूरता वही थी। ...और वही एक बार फिर घटित हुआ सन् 1984 में।

सन् 1984 भारत के इतिहास का एक न भूलने योग्य, दर्दनाक, दोषरहित नागरिकों के रक्त से रंगा हुआ एक भयावाह काला पन्ना है। कहते हैं कि अपना इतिहास सदैव याद रखना चाहिए ताकि भावी पीढ़ियां उसका सही मूल्यांकन कर सही दिशा ग्रहण कर सके, ताकि जो कुछ घटित हुआ, जो भी भूलें हुई, उनसे शिक्षा लेकर अच्छे समाज का सृजन किया जा सके, जिनसे ऐसे हालात पैदा न हों और उन परिस्थितियों की पुनरावृत्ति न हो। जिस दरिंदगी से इन्सानियत की हत्या उस दौर में हुई, उसके चिन्ह आज भी अनेकों दिलों पर अंकित हैं। आज भी अनेक आत्माएं चीख-चीख कर उस वहिशीपन और हैवानियत की साक्षी देती हैं। विगत लगभग 36 वर्षों से आज तक इस विषय पर कितना कुछ लिखा, पढ़ा, बोला गया और पढ़ने, सुनने और देखने वाले प्रत्येक व्यक्ति ने उस दर्द को अनुभव किया है।

घटिया राजनीति से प्रेरित उस घटना के बाद बहुत से लोगों में क्रोध का भाव पैदा हुआ, कई लोगों ने तो शस्त्र भी उठा लिए और उसके बाद कत्ल-दर-कत्ल हुए, मानवता छलनी हुई, हृदय तो कांप कर रह गए और मानवता रूपी फुलवाड़ी नष्ट हुई। उस घटना के बाद से अब तक एक पीढ़ी बदल चुकी है और नई पीढ़ी के लिए वह सत्य जानना आवश्यक है कि जब यह सब घटनाएं घटित हो रही थीं तब क्या मानवता पूरी तरह से मर चुकी थी ? जब निर्दोष लोगों की गर्दनों में टायर डालकर आग लगाई जा रही थीं, सिक्खों के घर जलाए जा रहे थे, महिलाओं और मासूमों से दरिंदगी हो रही थी, तब क्या हमारे देश में से मानवीय भावनाएं लुप्त हो गई थीं/ मर चुकी थीं ? क्या समूचा

वायुमण्डल भी कातिल और जनून के अंधड़ में अंधा, बहरा हो चुका था ? क्या किसी ने भी माताओं, बहनों, बेटियों को किसी प्रकार का आश्रय न दिया ? क्या किसी ने भी मज़लूमों का हाथ न पकड़ा ? क्या तब किसी ने इस समूचे परिदृश्य में कोई आह न भरी ? नहीं ! ऐसा भी न था। अंधेरे की चोट कितनी भी भयानक क्यों न हो, प्रकाश की किरण अभी भी ज़िंदा थी, दिलों में प्यार, अपनत्व व सदियों की सांझ ज़िंदा थी। अकाल पुरुख की प्रेरणा से कुछ ऐसे भी लोग थे, जो उस मानवता की फुलवाड़ी की रक्षा कर रहे थे। जो उस काल-रात्रि में भी अनेकों के लिए प्रकाश पुंज बने। ऐसे वो लोग कौन थे ? वो कौन लोग थे जिनकी कहानी को विष बोने वालों ने दबाए रखा ? ये बात तो वो लोग ही बता सकते हैं जिन्होंने वह संताप झेला है, भारी प्यास को बड़ी दूर से आई पानी की मशकों से बुझाया है। वो लोग, जिन्होंने ज़ालिमों को भी देखा और वाहेगुरु, करतार के भेजे हुए उस रक्षक को भी देखा। जिन्होंने गहरे घाव देनी वाले को भी देखा और उस घाव पर मरहम लगाने वाले को भी देखा। आइए, चलें उन लोगों के पास और सुनते हैं उन्हीं के मुँह से उनकी दुखभरी, आपबीती दास्तां, उन्हीं की आत्माओं पर अंकित दर्द की कथा... मेरे और मेरे बज़ुर्ग साथी, सहयोगी श्री दीपक प्रकाश जी के साथ... जिन्होंने एक प्रकाश स्तम्भ बन मुझे रास्ता दिखाया और जिनके मार्गदर्शन के बल पर ही मैं उन आत्माओं तक पहुँचने में सफ़ल हुआ और इस पुस्तक को लिखने के दुरूह कार्य को सम्पन्न करने में सफ़ल हुआ।

अमरदीप जौली,

409/1, दारापुर बाई-पास, टांडा उड़मुड़,

ज़िला - होशियारपुर, मो. - 94658-58910,

amarjolly4u@gmail.com

विषय सूची

1.	जान-माल की रक्षा की...	1
2.	बचाने वाला बड़ा	3
3.	कांग्रेसी ज़ख्म पर संघी मरहम	5
4.	घर में रखकर बचाया	7
5.	लूटने वाले और बचने वाले	11
6.	करतार के भेजे गए रक्षक	14
7.	परीक्षा हो गई, अपने कौन ?	17
8.	प्रकाश-पुंज	20
9.	हमलावर कांग्रेसी, मददगार संघी	24
10.	मौत के मुँह से निकाला	26
11.	फरिश्ते संघी	29
12.	बंटवारे (विभाजन) की तरह उजड़ने न दिया	32
13.	सरकारी गुण्डे और रक्षक संघी	34
14.	मुश्किल घड़ी में साथ खड़े हुए	36
15.	बालमन पर गहरे चिन्ह	40
16.	घरों के बाहर पहरा देकर जान बचाई	41
17.	अपने घर में रखकर जान बचाई	43
18.	दहलीज पर खड़े रहनुमा	45
19.	जिसे शत्रु समझा, वही मित्र निकला	49
20.	दुकान लूटने से बचाई	53
21.	हवाई फायर करके बचाया	55
22.	दीवार बन खड़े संघी	57
23.	मानवता के पहरेदार	58
24.	दु:ख में सांझीदार	62
25.	अतीत की परछाइयां	65

जान-माल की रक्षा की...

स. अवतार सिंह

अवतार सिंह जी मध्य प्रदेश प्रांत में ग्वालियर शहर के हनुमान नगर मोहल्ले में रहते हैं। यूँ तो वह मोहल्ला पंजाबियों का ही है और अवतार सिंह जी का जन्म भी वहीं का है। उनका प्लासटिक की पानी की टैंकियों का व्यवसाय है। परिवार में दो बेटियां और एक बेटा है।

31 अक्तूबर की रात्रि को 8.00-8.30 बजे तक वह अपनी दुकान पर ही थे। घर वापसी तक वहाँ का माहौल पूर्णत: शांत था। वह उन दिनों को स्मरण करते हुए बताते हैं कि मैं रात का भोजन कर सोने की तैयारी कर ही रहा था कि 11 बजे के आस-पास समाचार मिला कि दंगाई भीड़ सिक्खों पर हमले कर रही है। फिर समाचार आया कि भीड़ ने श्री गुरुद्वारा साहिब पर हमला करके उसे लूट लिया है। जैसे-तैसे रात तो बीत गई। लेकिन आँखें बन्द कर लेने मात्र से तो दुर्घटना, बुरा समय टलता नहीं है। इस प्रकार वह रात भी भीड़ के उस उन्माद को मिटा/टाल न सकी। अगले दिन यानि 01 नवम्बर की सुबह अभी घर पर ही था कि दूसरी बार शोर-शराबे की आवाज़ें आने लगीं। खबर मिली कि हमारी दुकान के पास ही स्टील फर्नीचर की एक दुकान थी, जो एक सिक्ख बंधु की थी, भीड़ ने उसका सारा सामान लूट लिया। कुछ न छोड़ा। इतने में ही हम अपने घर की छत्त पर चढ़े। वहाँ से हमारी दुकान नज़दीक ही थी और वहाँ से दिखाई भी देती थी। हमने उस उन्मादी भीड़ को सिक्खों की दुकानें लूटते हुए देखा। दुकानों को लूटने वाले निकट के रहने वाले लोग ही थे, जिन्हें सिखों की दुकानों की पहचान और जानकारी थी। अथवा दुकानों के बोर्ड भी उनकी पहचान बताने के लिए काफ़ी थे। फिर हमने देखा कि कुछ लोग हमारी दुकान को लूट रहे हैं। कुछ सामान लूट लिया गया तो कुछ बचा खुचा सामान मोहल्ले वाले बचा कर हमारे यहां ले आए। दुकानों को लूटने के बाद दंगा करने वालों ने हमारे मोहल्ले का भी रुख किया। मेरा तो बचपन भी यहीं बीता था।

आस-पास के सभी युवा मेरे हम उमर और दोस्त भी थे। सभी ने हमें कहा कि हम चिंता-रहित होकर घर पर रहें, यह भी भरोसा दिया कि वे खुद ही दंगाइयों से निपट लेंगे। दंगाई मोहल्ले की तरफ आए लेकिन मोहल्ले वालों ने किसी को भी अंदर न आने दिया।

यह सब उस समय हुआ जब सभी पुलिस वाले अपना दायित्व भूल कर सरकार के पिछलग्गू बने हुए थे। मोहल्ले वालों के उस प्यार और अपनत्व के कारण ही हमारा परिवार उस कठिन दौर में सुरक्षित रहा। जब ऐसा लगता था कि हर कोई सिक्खों का दुश्मन है, तब इन लोगों के हमारे साथ खड़े रहने का आभास हुआ, पता चला। कुछ दिनों बाद ही समूचा वातावरण शांत हुआ। चार दिनों के बाद हम सब इकट्ठे होकर ज़िलाधीश को मिलने के लिए स्थानीय पुलिस थाना गए, जहां ज़िलाधीश ने स्थिति की समीक्षा करने के लिए और हमें सुनने के लिए बुलाया था। ज़िलाधीश ने हमारे सामने ही थाना प्रमुख को कहा कि 04 दिन बीत जाने और सब कुछ बर्बाद हो जाने पर भी कोई सिक्ख कुछ मांगता (सहायता) दिखाई नहीं दिया। उन्होंने कहा कि सचमुच ही इन लोगों का जज़्बा और व्यवहार बेमिसाल है। सरकार ने बाद में सहायता के1 तौर पर 2-2 हज़ार रुपये अदा करने की घोषणा की, और बहुत से लोगों ने तो वह सहायता राशि लेने से भी मना कर दिया। बस, उस काले दौर में जहाँ समय, परिस्थितियां, सरकारें, प्रशासन और वह ज़नूनी भीड़ सब हमारे विरुद्ध थे, प्यार की एक सांझ ही थी जो मौत के आगे दीवार के समान चट्टान की भांति खड़ी रही थी।

स. बलकार सिंह

बचाने वाला बड़ा

सरदार बलकार सिंह जी अपने जीवन के बचपन, जवानी की आयु भोगकर लगभग 71 वर्ष व्यतीत कर चुके हैं। उनके तीन बेटे और एक बेटी है। एक बेटा अविवाहित और दूसरे दोनों शादीशुदा हैं और अपना गृहस्थ जीवन बढ़िया ढंग से बिता रहे हैं। सरदार जी आजकल घर पर ही रहते हैं क्योंकि उनकी धर्मपत्नि जी को अधरंग हो गया था और बीमारी से लड़ने के लिए समूचा परिवार उनका साथ दे रहा है। देश में जब इंदिरा गांधी ने आपातकाल लगाया था, उससे कुछ ही समय पहले वे दिल्ली के कृष्णापुरी में आकर बस गए थे। आपातकाल का वह काला दौर उन्होंने इसी घर के दरवाज़ों खिड़कियों से स्पष्ट देखा है। आयु के विभिन्न पड़ाव पार कर अब अंदर धंस चुकी आँखे और यही मकान 1984 की सिक्ख नसलकुशी के भी साक्षात गवाह बने।

उन दिनों वह वहां पर एक ढाबा (भोजनालय) चलाया करते थे जो कि जखेरे में था। ढाबे के साथ ही उनका खरोड़ों का कारोबार भी था जिसे वह ढाबे के बाहर मेज़ लगाकर किया करते थे। दिन में वह ढाबा चलाते और संध्या के समय खरोड़े का काम करते। कारोबार काफ़ी बढ़िया चल रहा था। जीवन बहुत बढ़िया ढंग से चल रहा था। और फिर वो अकस्मात घटनाएं घटीं, जिनके बारे में किसी ने सपने में भी कभी सोचा न था, जिस पर विश्वास किया जा सके । प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी की हत्या हो गई। वह बताते हैं कि 31 अक्तूबर तो आम दिनों की भांति वे अपने ढाबे पर ही थे। दिन तो भली-भांति निकल गया, परंतु दूसरे दिनों के भांति उस दिन चहल-पहल कम थी। वातावरण में, आस-पास ऐसा तनाव सा था कि जैसे किसी बड़ी दुर्घटना के बाद शांति हो जाती है। वह बताते हैं कि उस दिन उन्होंने सायं के लगभग 06 बजे खरोड़े का काम आरम्भ किया। उनके मन-मस्तिष्क पर किसी तरह की किसी अस्वाभाविक

बात/घटना होने का लेश मात्र भी विचार न था। लगभग 7/7.30 बजे का समय होगा कि कोई सज्जन चलती बस में से उतर कर उनके पास आया, वह उनका पुराना ग्राहक था। वह व्यक्ति कभी कभी ढाबे पर खाने-पीने के आया करता था। आते ही उसने प्रश्न किया, ''सरदार जी, क्या कर रहे हो ?'' तो मैंने उन्हें साधारण सा उत्तर दिया, ''करना क्या है, मेरे भाई। जो मेरा व्यवसाय है, उसे ही कर रहा हूँ।'' इस पर उस व्यक्ति ने कह डाला कि सरदार जी इस काम को यहीं छोड़ कर भाग जाओ। आपकी जान खतरे में है। इस पर मैंने हैरानी के भाव में उससे पूछा कि ऐसा क्या हो गया है। खतरा किस बात का ? तब उसने मुझे वहाँ घट रही समूची घटनाओं के बारे में बताया और सावधान करते हुए कहा कि मैं जितनी ज़ल्दी हो सके, वहां से निकल जाऊँ और अपनी जान बचा लूँ। मैंने उसकी बातों को गम्भीरता से लिया और सारा सामान वहीं छोड़ते हुए तुरंत वहां से निकल गया।

मैं बहुत तेज़ी से ज़खीरा चौक बस स्टैंड पर पहुंचा, जल्दी ही मुझे बस भी मिल गई। मैंने देखा कि बस में लोग मुझे घूर-घूर कर देख रहे थे, लेकिन मैंने अपनी हिम्मत बनाए रखी और मन में विचार किया कि जो होगा सो देखा जाएगा। और कोई दूसरा चारा, विकल्प भी न था। लेकिन जैसे ही बस तिलक नगर चौराहे पर पहुँची तो पुलिस वालों के इशारे पर ड्राइवर ने बस को रोक लिया। उन्होंने कहा कि बस आगे नहीं जा सकती क्योंकि आगे लोगों का बहुत बड़ा झुण्ड खड़ा है, इसलिए आगे जाने में बहुत खतरा है। अब तो घर जाना भी पहाड़ से बड़ा हो गया। बहुत हिम्मत करके मैं बस से नीचे उतरा और पैदल ही घर की ओर जाने का इरादा बनाया। बच बचा कर गलियों से होता हुआ घर की ओर चलने लगा। कुछ ही देर में मैं गलियों से होते हुए घर पहुँच गया। मुझे सही सलामत पाकर सभी घर वालों की सांस में सांस आई। परंतु भय और निराशा के घने काले बादल समूची दिल्ली पर छाए हुए थे और इसकी दहशत हम भी अनुभव कर रहे थे। दूसरे दिन हमें पता चला कि उग्रवादी भीड़ ने हमारी दुकान को, ढाबे को लूट लिया था। दुकान का सारा फर्नीचर जला कर राख कर दिया था।

घर में भी ज़िंदगी पर गम्भीर संकट था। लेकिन हमारे पड़ोसी श्री यशपाल

आर्य जी आर.एस.एस. के कार्यकर्ता थे, वह हमारे पास आए और हमें हर तरह से निर्भयता का विश्वास दिलाया। उन्होंने हमें भरोसा दिया कि वह हर तरह से हमारे साथ खड़े हैं। उनके दिए गए प्रोत्साहन और हिम्मत के बल पर ही सारा मोहल्ला हमारे साथ डटकर खड़ा रहा। धीरे धीरे महौल शांत हो गया। हमने अपना कारोबार फिर से शुरू किया लेकिन हमें जो आर्थिक नुकसान हुआ था, उसका कोई मुआवज़ा सरकार की ओर से हमें कभी न मिला। इस पर ज़ख्मों पर नम्क छिड़कते हुए सरकार की ओर से खाली वादे मात्र ही किए गए। लेकिन यह भी कटु सच्चाई है कि उस दिन हमारी दहलीज पर साक्षात खड़ी मौत का मुँह श्री यशपाल आर्य और मोहल्ले वालों ने ही हिम्मत के साथ मोड़ा तथा उन्होंने ही अपनेपन के अहसास से हिम्मत भरी जिससे हम एक बार फिर अपने पैरों पर खड़े होने में सक्षम हुए।

कांग्रेसी ज़ख्म पर संघी मरहम

श्रीमती चरणजीत कौर

श्रीमती चरणजीत कौर आजकल हरियाणा राज्य के फरीदाबाद ज़िले के छोटे से कस्बा वल्लभगढ़ में रहती हैं। उनका मायका घर तिलक विहार, तिलक नगर, दिल्ली में है, जहाँ वह सन् 1984 की उस नस्लकुशी के बाद आए। इससे पहले उनका परिवार हरियाणा के ही बहादुरगढ़ में रहता था। घर में माता पिता के अतिरिक्त दो भाई थे। पिता जी एक सरकारी स्कूल में अध्यापक थे। अतीत के कदमों को नापते हुए उस दर्दनाक दृश्य को स्मरण करते हुए वह बताती हैं कि जिस दिन श्रीमती गांधी की हत्या हुई, तब हम स्कूल से घर आ रहे थे कि पिता जी घबराए हुए आए और हमें जल्दी-जल्दी अपने साथ घर ले गए। कुछ ही देरी बाद पता चला कि सिक्खों पर हमले आरम्भ हो गए हैं। हमारे मोहल्ले में हमारे

साथ तीन और घर थे। इनमें से एक परिवार का टेंट हाऊस था और दूसरे दो घर दो भाईयों के थे, जिनकी स्टेशनरी की दुकानें थीं। दंगाइयों ने दोनों दुकानों को आग लगा कर सब कुछ जला डाला, जलकर राख हो गया सब कुछ। उन बेचारों का तो कुछ भी न बचा। दंगाइयों ने टेंट हाउस का भी सारा सामान लूट लिया। हर ओर यही हालात थे। हम सभी अपने घर में भय-भीत थे। फिर समाचार मिला कि आर.एस.एस. के लोग हाथों में लाठियां लिए सड़कों पर घूम रहे हैं और सिखों को बचा रहे हैं। भय के वातावरण में हमारे अंदर आशा की एक किरण जगी। सायं को हमारे घर संघ के ईशवर दास इलाहाबादी आए, जो कि पापा जी को जानने वाले थे।

उन्होंने बताया कि हालात बहुत खराब हैं। यहां आपकी जान को खतरा हो सकता है, आप सब हमारे घर आ जाओ। पापा जी को उनका सुझाव ठीक लगा। कार्तिक के महीने में घर के निकट एक मंदिर में कथा चल रही थी। ऋतु में भी बदलाव हो रहा था और कुछ-कुछ, हल्की सी सर्दी भी हो गई थी। भोर में लगभग 03 बजे हम कम्बल ओढ़, मूँह ढक कर ईशवर दास जी के साथ हो लिए। वहाँ हम 13 दिन तक रहे। उन्होंने न सिर्फ हमें अपने घर में ही रखा, हमारे घर की राखवाली, देख-भाल भी की। उन्होंने हमें कहा कि उनका रहते हमें भयभीत होने की कोई ज़रूरत नहीं है। जिस कठिन दौर में उन्होंने हमारा साथ दिया, वो हम कभी भी भूल नहीं सकते हैं। सब ओर शांति होने पर हम अपने घर लौट आए परंतु इस घटना के बाद हम उस घर में बहुत देर तक न रह सके। सिक्खों की उस नस्लकुशी ने केशधारियों और सहजधारियों के बीच एक बड़ी खाई पैदा कर दी थी और उस गंदी सियासत का शिकार आम जनता को होना पड़ा। मेरा बड़ा भाई बस से रोज़ाना दिल्ली पढ़ने जाता था। बस में कुछ शरारती लोग उसको बहुत तंग करते थे। एक बार तो किसी ने उसके साथ झगड़ा भी कर लिया, झगड़ा भी बढ़ गया। इस पर पापा ने दिल्ली जाकर रहने का निर्णय कर लिया। वहाँ तिलक विहार में हमारे कुछ सम्बंधी भी रहते थे, इसलिए हम यहां आ गए। लेकिन जब भी हम उन दिनों की घटनाओं को याद करते हैं तो दिल दहल सा जाता है। इस पर भी कठिनाई के उन दिनों में ईशवर दास जी का वो प्यार और सहायता हमारे लिए मरहम के समान है। ऐसे ही

लोगों ने उस अंधेरी में भाइचारे, इन्सानियत के दीपक की रक्षा की। यह उस भाइचारे, इन्सानियत भरे प्यार की एक चिन्गारी ही थी जिसने उस दुखद घटना के बाद भी जीवन में कटुता नहीं आने दी, अपितु वह हमें सदैव ही नेकदिली की राह पर चलने के लिए प्रेरित करती रही।

घर में रखकर बचाया

डा. अवतार सिंह

डाक्टर अवतार सिंह जी शास्त्री का जन्म सन्त लोंगोवाल जी के गाँव के निकटवर्ती गाँव में हुआ था। उनकी आरम्भिक शिक्षा वहीं के सरकारी स्कूल में ही हुई थी। उनकी दादी उदासीन संतों को मानने वाली थी। उनके ताऊ जी, स. मग्घर सिंह और पिता जी स. जग्गा सिंह ओडिशा के मुख्यमंत्री बीजू पटनायिक की सुरक्षा में तैनात थे। जीवन बहुत बढ़िया चल रहा था। जैसे प्रकृति दिन-रात, धूप-छाँव, सर्दी-गर्मी का अहसास करवाती है, कि कुछ भी स्थायी नहीं होता, वैसे ही ज़िंदगी भी अपने रंग दिखाती है और कुछेक रंग तो ऐसे होते हैं कि कभी छूटते ही नहीं और न ही उन पर कोई दूसरा रंग चढ़ता है। स्पष्ट है ऐसा रंग एक ही होता है और वो रंग काला ही है। ऐसा ही उस काले दौर की स्मृतियां भी डा. अवतार सिंह की आत्मा को कचोटती रहती हैं, और तब सभी दृश्य आंखों के सामने ताज़ा हो जाते हैं। ....और वह 35 साल पुरानी यादें, कहानी के रूप में ताज़ा हो भावनाओं में बहती हुईं सीधे ही दिल को चीरती हुई तेज़ी से बह निकलती है।

डाक्टर साहेब बताते हैं कि उन दिनों मैं 15-16 वर्ष का था। पंजाब के

हालात दिन-प्रतिदिन बिगड़ते जा रहे थे। ओडीशा के कटक शहर में हमारे रिश्तेदार रहते थे और अक्तूबर 1984 में मैं उनसे मिलने कटक आया हुआ था। कटक ओडिशा का एक बड़ा शहर है तथा यहाँ बड़ी संख्या में सिक्ख भाईचारे के लोग भी रहते हैं। यहीं पर महानदी के तट पर श्री गुरू नानकदेव की स्मृति में श्री दातुन साहेब गुरुद्वारा भी है। यहाँ इस गुरूद्वारा में विश्व भर से बड़ी संख्या में सिक्ख संगत माथा टेकने (निवाने) आती है। मुझे अच्छी तरह याद है कि उस समय मैं कटक के चौधवार स्थान पर था जब मैंने आकाशवाणी से प्रसारित यह समाचार सुना कि प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी की हत्या हो गई है। इस समाचार से वहाँ लोगों में अफ़रा-तफ़री, भाग-दौड़ सी मच गई थी। लेकिन यह तब तक तो सब ठीक-ठाक था जब तक यह सुनिश्चित न हो गया कि श्रीमती की हत्या किसने और क्यों और कैसे की ? लेकिन जैसे ही यह स्पष्ट हुआ कि श्रीमती गांधी के कातिल कौन हैं, उसी के साथ ही दहशत और भय का वातावरण का दौर आरम्भ हो गया।

दिल्ली में चला सिक्खों के कत्ले-आम का काला अंधड़ यहाँ कटक तक भी आ पहुँचा। इससे यहाँ भी असुखद घटनाएं आरम्भ हो गई। हम अभी घर पर ही थे कि हमने यह शोर सुना कि सिक्खों को मारा जा रहा है। प्रशासन के लोग भी (हमें) सतर्क कर रहे थे लेकिन इन चेतावनियों के शोर ने वातातावरण को और भी भयभीत करना आरम्भ कर दिया। इस दौर की स्मृतियां आज भी मेरे मन पर अंकित हैं। जब कभी भी उस दृश्य की याद आती है तो मेरी आत्मा तक कांप सी जाती है। उस समय मुझे अपना देश भी बेग़ाना सा लग रहा था। तब ऐसा अनुभव होता था कि जैसे सारा ज़माना ही सिक्खों का शत्रु हो गया हो। भीड़ ढूँड-ढूँड कर सिक्खों को मार रही थी। उनकी दुकानें, घर या तो जलाए जा रहे, आग की लपटों में थे या लूटे जा रहे थे। ओडिशा के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री बीजू पटनायक कांग्रेस में ही थे और उन दिनों वह मलेशिया गए हुए थे। स्थानीय लोग सिक्खों को बचाना तो चाहते थे लेकिन तब वातावरण बहुत खराब था। सिक्खों को बचाने वालों को भी अपनी जान का खतरा था। किसी भी दिशा से किसी भी सहायता की कोई आशा न थी।

अब हम परिस्थितियों को देखते हुए अपने घरों में ही रूपोश हो गए थे। हम कुल 06 लोग थे। लेकिन घर में छुपे रहना भी खतरे से खाली न था, सुरक्षित न था। लोग सिक्खों को घरों से निकाल निकाल कर मार रहे थे। तभी वाहेगुरू की कृपा से उस घनी अंधेरी रात में एक सज्जन हमारे सहायक, आश्रयदाता बने। वह थे श्री राम महापात्रा जी। महापात्रा जी विश्व हिंदू परिषद से सम्बन्धित थे तथा ओडिशा में वह एक धार्मिक नेता के नाते जाने, पहचाने जाते थे (विख्यात थे)। भगवान श्री जगन्नाथ जी की वार्षिक रथ-यात्रा में भी उनकी विशिष्ट भूमिका रहती थी। उन्होंने ही उस कठिन दौर में हमें अपने पास छुपाए रखा। हम उनके पास 05 दिन तक रहे। इस के पश्चात हमने उनसे आज्ञा लेकर ओडीशा छोड़ने का निर्णय लिया और मालगाड़ी में छुपकर कोलकाता चले गए। उस समय कटक से और भी अनेकों पंजाबी कोलकाता और अंडमान निकोबार चले गए थे।

तब हम कोलकाता पहुँचे और कई दिनों तक वहाँ रहे। कोलकाता तब सुरक्षित था और वहाँ पर पंजाबियों की संख्या भी काफ़ी थी। और इसी कारण से हमारे मनों में सुरक्षा का भाव था। वातावरण शांत होने के बाद लगभग 5-6 महीने के बाद हम पंजाब लौट आए। हमें इस बात का निरंतर आभास, अहसास होता रहा कि कैसे उस कठिन दौर में श्री महापात्रा जी ने हमारी सहायता की, जान की रक्षा की। उनकी सहायता से ही हम जीवित बचे थे। इसी ऋण-भाव को अपने हृदय में लिए लगभग 02 साल बाद हम श्री महापात्रा जी के प्रति आभार प्रकट करने के लिए कटक गए, लेकिन शायद हमारे भाग्य में उनके फिर से दर्शन करने का लेख न लिखा हुआ था। तब तक वे इस जहाँ से प्रयाण कर चुके थे। उनके साथ फिर से मिलना हमारे भाग्य में न था। लेकिन हमारे दिलों में उनकी नेक रूह की यादें अभी भी सजीव हैं।

ऐसे ही धीरे धीरे अन्य घटनाएं भी प्रकाश में आईं। हमें जानकारी मिली कि उन्हीं दिनों हमारे एक निकट-सम्बंधी पंजाब मेल से त्रिलोकपुरी से मुम्बई जा रहे थे कि रेलवे स्टेशन पर ही सिक्खों का कत्ले-आम शुरू हो गया। वह भी एक केशधारी सिक्ख थे। तब वहाँ किसी भी प्रकार से छुपकर जीवन की

रक्षा करना सम्भव न था। उनके बताए अनुसार उस समय उन्हें वहाँ एक सज्जन मिले जो उनको अपनी कार की डिक्की में छुपा कर ले आए और उन्होंने, उनकी (हमारे सम्बन्धी की) जान की रक्षा की। बाद में उन सज्जन के बारे में जानकारी मिली कि वे सज्जन आर.एस.एस. के थे। इस पर संघ नाम की किसी संस्था के बारे में मुझे ज्ञात हुआ और जाना कि कैसे उस समय संघ वालों ने सिक्खों का साथ दिया। शायद यही कारण था कि संत हरचंद सिंघ लौंगोवाल भी आर.एस.एस. के प्रति आदर भाव रखते थे। लेकिन तंग नज़रिए की राजनीति से संघ के प्रति दुश्प्रचार किया गया। मीडिया में प्रचार से कोसों दूर रहने वाली समाज-सेवी संस्था आर.एस.एस. के कार्यकर्ताओं का मानवीय सेवा के हितार्थ किए गए कार्यों और उनके जुझारूपन पर झूठे आरोपों की राख ने संस्था के सेवा-कार्यों को दबाए रखा। लेकिन सत्य तो सदैव सत्य ही रहता है और घना-टोप अंधेरों की छाती को चीर कर भी सब के सामने आ जाता है, अपने होने का प्रमाण देता है।

आर.एस.एस. के कार्यकर्ता तो आरम्भ से ही कांग्रेसी दमन का शिकार होते रहे हैं। यहाँ तक कि इंदिरा गांधी द्वारा लगाए गए आपातकाल के दौरान भी इन पर कई प्रकार के अत्याचार हुए। परंतु सराहनीय हैं यह लोग जो सदैव मानवता के पक्ष में खड़े रहे और इन्होंने हमारे जैसे लोगों की हिम्मत बढ़ाई, हिम्मत बने रहे। और तब मैंने भी अपने मन में यह धारणा बना ली कि मैं भी इस संस्था में सम्मिल्लित होऊंगा और इसी तरह समाज की सेवा करूँगा। बचपन की वही घटनाएं मेरी प्रेरणाएं बनीं और मैं भी समय आने पर संघ से जुड़ा और आज भी देश सेवा में लगा हुआ हूँ।

लूटने वाले और बचाने वाले

स. गोबिंद सिंह

मध्यप्रदेश में ग्वालियर शहर का देश और सिक्ख धर्म के इतिहास में एक विशेष महत्व है। छठी पातशाही श्री गुरू हरगोबिंद साहेब को मुग़ल बादशाह जहांगीर ने ग्वालियर के किले में ही बंदी बना रखा था और श्री गुरू जी ने वहां से रिहाई के समय अपने साथ 52 पहाड़ी राजाओं को भी उस बंदीगृह से मुक्त करवाया था और उसी की स्मृति में सिक्ख दीपावली को बंदीछोड़ दिवस के रूप में समारोहपूर्वक मनाते हैं। लेकिन इतिहास साक्षी है कि कोई भी सत्ता जब ताकत के नशे में होती है तब वह न ही मानवता को स्मरण रखती है और न ही जुल्म के अंतिम परिणाम को। शायद ग्वालियर में वही औरंगज़ेबी और फिरंगी अत्याचार पुनर्जीवित होना था। उसी काले दौर को गोबिंद सिंह जी ने अपनी आँखों से देखा है। ...और जब मृत्यु निकट आ खड़ी हो जाती है न, फिर वह भले ही खाली हाथ लौट जाए लेकिन उन बुरे लम्हों को आजीवन भूलने न देती है।

और उन्हीं स्मृतियों को ताज़ा स्मरण करते हुए गोबिंद सिंह जी कहते हैं कि उनका आज की भांति ही ग्वालियर शहर में चीनी और सरसों के तेल का कारोबार होता था। दिन ऐसे ही गुज़र रहे थे, सूर्य नित्य ही अपने समय पर उदय होता और संध्या होते ही अस्त भी हो जाता। हम एक अच्छी और खुशहाल ज़िंदगी जी रहे थे कि अचानक ही एक हादसा, दुर्घटना सारे देश की भांति हमारे साथ भी घटित हुई। 31 अक्तूबर 1984 को प्रधानमंत्री श्रीमति इंदिरा गांधी की हत्या हो गई। दुर्घटना का यह समाचार प्रत्येक, आम-ओ-खास व्यक्ति तक आग की भांति पहुँच गया। ...और दोपहर ढलते-ढलते हमारे घर और हमारे सभी दोस्तों/ मित्रों तक यह दुखदायी समाचार पहुँच गया और सभी दिशाओं से सभी को फोन पर सतर्क रहने के संदेश आने आरम्भ हो गए।

हर तरफ एक प्रकार की शांति, चुप्पी थी। इस पर भी उस शांति, चुप्प रहने के वातावरण में भी एक प्रकार का भय, आतंक का शोर अपने शिखर पर था। संध्या होते होते ग्वालियर में भी सिक्खों के घरों, दुकानों पर हमले होने शुरू हो गए। मुझे भलि-भांति स्मरण है कि इन हमलों का आरम्भ एक सरदार जी के होटल पर हमले से हुआ। इसके बाद धीरे धीरे यह आग एक प्रकार के निशाने का रूप ले गई और सिक्खों के घर और दुकानें इस हिंसा का शिकार होने लगे।

दूसरे दिन 01 नवम्बर को प्रात:काल लगभग 08.00- 08.30 बजे लोगों का एक बड़ा दल आया और आते ही वह हमारे घर में प्रवेश कर गए। दंगाइयों की इस भीड़ ने बाहर का दरवाज़ा तोड़ डाला और इसी के साथ ही वह घर के दूसरे सामान को तोड़ने फोड़ने लगे। लुटेरों के लिए यह एक स्वर्णिम मौका भी था। हमारी आँखों के सामने ही वह लोग हमारे घर का सामान लूट-लूट कर ले जाने लगे। हमारा सब कुछ लूटा जा रहा था और हमारी सहायता के लिए वहाँ कोई भी न था। यहाँ तक कि उस समय सहायता के लिए हमारा कोई निकट सम्बन्धी भी हमारे तक पहुँच न पाया, क्योंकि हमारे घर तक आने में उनकी अपनी जान को भी खतरा था। कुछ ही महीने पहले हमने एक नई फिएट कार खरीदी थी। देखते ही देखते भीड़ ने हमारी आँखों के सामने ही कार को आग लगा दी।

यह दृश्य देखकर तो हमारी बड़ी दीर्घ सी आह निकल कर रह गई। भीड़ हमारे लोगों के साथ मार-पीट कर रही थी और हम बेबस और लाचार थे। भीड़ के वहाँ से जाते ही तत्काल ही हमारे पड़ौसी राजे साहेब और उनके बच्चों ने गाड़ी पर मिट्टी और पानी डाल कर बड़ी मुश्किल से आग पर काबू पाया अन्यथा और बड़ा नुक्सान हो जाता। हमारा चीनी और सरसों के तेल का कारोबार था। पुलिस चौकी भी हमारी दुकान के बिलकुल सामने थी। इसके बावजूद उस भीड़ ने हमारी दुकान और गोदाम को बेखौफ़ होकर लूटा। पुलिस और सरकार उस समय क्या चाहते थे, शायद इन घटनाओं के बाद बताने की आवश्यकता अब नहीं है। हमारा समूचा गोदाम साफ़ हो चुका था और इसी के साथ ही हमारी हिम्मत, साहस पस्त हो चुके थे। हम केवल यही सोचते रह गए

कि यह सब अचानक जैसे हो गया। सायं को श्री गंगाराम बहादुर जी हमारे घर पे हमारा कुशल क्षेम जानने आए। वह जनसंघ का पुराने कार्यकर्ता थे। पहले वे हमारे इलाके के पार्षद थे और बाद में वे विधायक भी रहे। उनका हमारे पिता जी से पुराना प्यार था। इसके बाद जगन्नाथ नाम के एक और सज्जन हमें मिलने आए, वह भी पूर्व जनसंघ के पुराने कार्यकर्ता रहे थे।

मुझे अच्छी तरह से याद है कि हमारे घर के सामने एक पार्क था जहाँ संघ की शाखा लगा करती थी और इस शाखा के कारण ही कभी कभी आर.एस.एस. वालों से दुआ सलाम हो जाती थी। और जब आर.एस.एस. के नेता डा. नेवासकर साहेब को इस घटना का पता चला तो वह भी लगातार हमसे सम्पर्क करते रहे और हमारी हिम्मत बढ़ाते रहे और हमें विश्वास दिलाते रहे। उन्होंने हमें सब प्रकार की सहायता का पूरा विश्वास दिलाया। आगामी 3-4 दिन तो माहौल बहुत ही खराब रहा। ग्वालियर के बहुत से सिक्ख परिवार पंजाब चले गए। यहाँ की लगभग एक-तिहाई सिक्ख आबादी पंजाब चली गई। लेकिन संघ वालों द्वारा दी गई हिम्मत और विश्वास के बल पर हमने साहस पूर्वक वहाँ ग्वालियर में ही बने रहे। मोती झील और लेबर एरिया में भी कुछ सिक्ख परिवार रहते थे। उन भाग्यहीनों की आर्थिक क्षति के साथ जानी नुकसान भी हुआ। वहाँ 2-3 लोगों को अपने प्राणों से हाथ धोने पड़े। प्रशासन न केवल सब घटनाओं के प्रति मूकदर्शक ही बना रहा अपितु पुलिस प्रशासन ने लुटेरों का भरपूर साथ भी दिया।

कुछ दिन बाद समूचा माहौल शांत हो गया। परिस्थितियां सुधरने लगीं और यहाँ से गए लगभग सभी लोग वापस लौट आए। कोई एक साल बाद लौटा तो कोई डेढ़ साल बाद आया.. परंतु लगभग सब लोग लौट ही आए। हमने लगभग 02 मास बाद चीनी तौलने वाला धर्मकांटा और 50 किलोग्राम, 100 किलोग्राम के बाट को पुलिस ने वहाँ के एक कांग्रेस नेता के घर से बरामद किया। सरकारी क्षतिपूर्ति के नाम पर सरकार की ओर से कार का 2000/- और दुकान के भी 2000/- रुपए मिले। इससे ऐसा प्रतीत हुआ कि जैसे सरकार की ओर से हमारे साथ कोई घटिया, क्रूर मज़ाक किया गया हो। इस सहायता राशि को भी पिता जी ने अस्पताल में उपचाराधीन सिक्ख परिवारों

में बाँट दिया। ये वे लोग थे जिनका इस सरकार की ओर से प्रायोजित सिख नसलकुशी, दंगे में सब कुछ उजड़ गया था। लेकिन उस घटना ने हमें हैवानियत और इन्सानियत दोनों पक्षों से परिचित कराया, उनसे सीधा आमना-सामना हुआ। हम उन लोगों के आभारी हैं जिन्होंने उस कत्लो-गारत के दौरान भी मानवता की रक्षा की।

करतार के भेजे गए रक्षक

स. गुरमीत सिंह

सरदार गुरमीत सिंह जी आजकल शिमला में रहते हैं जहां वह निर्माण का (construction) का व्यवसाय करते हैं। सन् 1984 में वह बमुश्किल 10 वर्ष के थे और उनका परिवार दिल्ली के चांदनी चौक में रहा करता था। उनका ननिहाल हरियाणा के बादशाहपुर नगर में था और उस नवम्बर 1984 के उस भयावह कत्ले-आम मे उनके परिवार के 07 लोग मार डाले गए थे। वह सभी घटनाएं आज भी उनके ज़हन में गहरी घर कर चुकी हैं। जिन्हें समय की बड़ी गहरी राख भी पूरे तरह भर न सकी। 22 वर्ष पहले, अर्थात 1997-98 में वह शिमला आकर बस गए थे और अब यही निवास उनका स्थायी निवास है।

बचपन की वह यादें आज भी उनके दिल्ली वाले आवास, मकान की स्मृतियां उनके दिलो-दिमाग़ में बसी हुई हैं। खट्टी-मीठी स्मृतियों की वह पिटारी आज भी उनका ज़हन के किसी कोने में सदैव सुरक्षित रहेगी। उस दिन को याद करते हुए वह बताते हैं कि जब 31 अकतूबर 1984 को उन्हें जानकारी मिली कि प्रधानमंत्री श्रीमति इंदिरा गांधी की हत्या हो गई है तो दिल्ली का

माहौल बहुत तेज़ी से बदलने लगा। माहौल की अशांति, बेचैनी शीघ्र ही हिंसा में बदल गई। क्या हो रहा है और क्या होगा ?... इसके बारे में कुछ भी पता न लग रहा था। मैं उस भय और बेचैनी को पूरी तरह से अनुभव कर रहा था। लेकिन बचपन ऐसे उलझन-भरे मसलों व परिस्थितियों के सामने विवश होता है। परंतु बचपन में मन को मिली कोई भी खुराक उसके भविष्य के चिंतन व दिशा को निर्धारित करती है। ...और यह निर्णय करते समय प्रकृति किसी भी जाति, पूजा-पद्धति, धर्म, रंग, भाषा, देश में कोई अंतर नहीं करती है। पिता जी का कपड़े का व्यवसाय था। हमारे घर से कुछ दूरी पर ही मेजैस्टिक सिनेमा था और घर के बिल्कुल सामने ही एक बेकरी की दुकान हुआ करती थी, जो कि एक सरदार जी की ही थी। कभी कभी मैं भी वहाँ सामान लेने के लिए जाता था। यूँ भी खान-पान की दुकानों से बच्चों का विशेष लगाव रहता है। हर दिन की भांति उस दिन भी वह दुकान खुली थी। माहौल खराब होने के कारण हम सब घर पर ही थे। धीरे धीरे घर के बाहर से शोर शराबे की आवाज़ें आने लगीं तो मेरे पिता जी ने दरवाज़े की दरारों के बीच से ही बाहर झांककर अत्यंत हिंसक भीड़ को देखा। वह दृश्य दिल को दहलाने वाला था जो मानवता को शर्मसार कर उसके टुकड़े-टुकड़े कर देने वाली एक घनी काली आंधी के समान था। उसी समय चेतना विहीन दंगाइयों की भीड़ ने मानवता को भी शर्मसार करते हुए तत्काल ही उस बेकरी को आग लगाते हुए एक तंदूर में बदल दिया। ... और इसी से प्रोत्साहित होकर उन्होंने कुछ ही दूरी पर स्थित शेरे-ए-पंजाब होटल को भी अग्नि-भेंट कर दिया। भीड़ के नारों, ऊँची आवाज़ में लगाए जा रहे प्रोत्साहित करने वाले नारों ने वातावरण को और भी अधिक भयावह बना दिया। इस पर तो सिक्खों की जो भी दुकान दिखाई दी, उसे या तो लूट लिया गया या जला दिया गया। हमारी अपनी ज़िंदगी भी भय से इतनी सहम सी गई थी कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी बारी की प्रतीक्षा कर रहा था। हमें भी जीवित रह जाने की कोई आशा न थी।... लेकिन सायं के समय आर.एस.एस. के कुछ कार्यकर्ता लोग खाकी नेकर पहने और हाथों में लाठियां लिए एकत्रित हो कर आ गए। पहले तो हमने उन्हें भी हमलावर समझा परंतु जल्दी ही हम निश्चिंत हो गए और उन्होंने हमारे घर और निकटवर्ती सिक्ख घरों

की घेराबंदी कर पहरा बिठा दिया। यह कार्यकर्ता दिन-रात हमारी रक्षा करते। पहले जहाँ हमें अपनी मृत्यु निश्चित दिखाई देती थी, बच जाने की कोई आशा न थी, वहीं अब यह लोग हमारी आशा बन गए। हम वाहेगुरू का लाखों लाख आभार प्रकट कर रहे थे कि उसी ने इन को प्रेरित करके इन्हें हमारी रक्षा के लिए भेजा। समय की धूल स्मृतियों को कितना भी धूमिल क्यों न कर दे, परंतु कोई इन्सान न तो उसको भूल सकता है जिसने उसे कठिनाई की ओर धकेला हो और न उसे जिसने उस मुश्किल की घड़ी में उसकी सहायता की हो, उसके साथ खड़ा हुआ हो। मुझे भी हर वह चेहरा अच्छी तरह याद है, जैसे कि यह कल की ही बात हो। मुझे याद है कि हमारे मोहल्ले की रक्षा करने वाली टोली का नेतृत्व श्री शांति देसाई जी कर रहे थे, जिसने 10-11 दिन तक हमारे घरों की रक्षा की थी और यह रात्रि का पहरा भी 12 दिन तक चलता रहा। ऐसी रक्षा करने वाले लोग हमारे ही आस-पड़ोस के लोग थे जो हमें अपना परिवार समझ कर बारी-बारी यह दायित्व निभाते रहे। धीरे-धीरे, कुछ ही दिनों में माहौल की वह गर्मी ठण्डी हो गई तथा कुछ दिनों के बाद जीवन भी अपनी गति से पुराने रास्तों पर चलने लगी। इस पर भी उन भयावह दिनों, पलों की दहशत अभी भी हमारे मनों के अंदर बैठी हुई है। यह उसी तरह से है जैसे किसी तूफ़ान के बाद उजड़ चुकी दुनिया की चीखें उसकी शांति में बसी हुई होती हैं। मुझे मेरे पिता जी की बातें आज भी याद हैं, भले ही उन दिनों मैं बहुत छोटा रहा था और लोगों के बारे में अधिक जानता न था। परंतु मेरे पिता जी सब को जानते थे। वह हमें बताते थे कि सिक्ख परिवारों पर हमला करने वाले लोग कांग्रेसी हैं तथा यह सब किया धरा कांग्रेस पार्टी वालों का ही था। उन लोगों का साफ़-साफ़ आदेश था कि कोई भी सिक्ख जीवित नहीं रहना चाहिए। उस समय की पुलिस भी उस नौकर के समान थी जो अपने मालिक के आदेशों को ही मानना है, अपना फ़र्ज़ समझता है। यह इस उक्ति के समान ही है...''जिसकी लाठी, उसी की भैंस।'' जब कोई सत्ता अपने दायित्वों को भूल कर आम लोगों पर अत्याचार करने पर तुल जाती है तब आम लोगों को न्याय नहीं मिलता है। तब सत्ता द्वारा किए गए पापकर्मों को छुपाया जाता है और किए गए अपने

अपराधों को किन्हीं दूसरे लोगों पर थोंप दिया जाता है। परंतु सत्य तो सत्य ही होता है, जो हमारे दिलों में दफ़न है महिफूज़ है।

परीक्षा हो गई, अपने कौन ?

स. गुरविंद्र सिंह

उत्तरप्रदेश देश का सब से बड़ा प्रांत है। गांधी परिवार इसी प्रांत के लोकसभा चुनाव क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करते हुए ही देश की सत्ता पर काबिज़ रहा है। प्रांत के क्षेत्रफल, जनसंख्या और लोकसभा की सीटों की संख्या के कारण इसी प्रांत का देश की सत्ता पर विशेष प्रभाव रहा है और 1984 के कत्ल-ए-आम के समय भी दिल्ली के बाद जो शहर सब से अधिक प्रभावित हुआ, वह भी इसी प्रांत का शहर कानपुर था। यह उत्तरप्रदेश का एक महत्वपूर्ण औद्योगिक शहर है। यहाँ हर जाति, बिरादरी, धर्म और सम्प्रदाय के लोग रहते हैं। 2011 की जनगणना के अनुसार यहाँ पर सिक्खों की आबादी लगभग 28000 थी। रंगनाथ मिश्रा आयोग की जाँच अनुसार 1984 के इस नर-संहार में अकेले कानपुर में ही 127 लोगों की मृत्यु हुई, जबकि लोगों के अनुसार तो 300 से भी अधिक लोगों की जानें गईं। कितने ही परिवार उस आग से प्रभावित हुए। कितनों के ही जीवन सदैव के लिए बदल गए। कुछ के घाव आज भी भरे न हैं। कुछ आज भी न्याय की प्रतीक्षा में हैं। जीवन के कुछ पन्ने इतने स्याह हो गए कि बाकी ज़िंदगी कोरी ही रह गई। इन शब्दों को पढ़ना, लिखना, सुनना तो फिर भी आसान है लेकिन उसका साथ निर्वाह करना तो .... यह वही जानते हैं जिन्होंने किसी अपने को खोया है। जो लौट कर न आया है.... और पीछे छोड़ गया है तो केवल और केवल आँसुओं का बड़ा सा बोझ, ढेर ! जिसे ढोते ढोते कब

उनकी आँखें झुर्रियों से भर गईं, कब यह आँखें बुझीं और कब बंद हो इस जहां को छोड़ गईं.... इसका आभास ही न हुआ। लेकिन इन सियासतदानों ने न तो इन आहत हुए लोगों को कोई न्याय दिया और न ही इन के घावों पर कोई मरहम ही लगाई।

परंतु यह सब तब होता है जब आत्मिक सत्य से ईमानदार प्रयास किए जाएं अन्यथा तो इतिहास साक्षी है कि लोग अपना किया पाप दूसरों के माथे पर मढ़ देते हैं.... और यह हुआ भी। इसी पशो-पेश में मानवता सदैव ही तार-तार हुई है। और इसी सब कुछ को अपनी ही आँखों से सहन किया और देखा है स. गुरविंद्र सिंह ने। भाई साहेब कानपुर में रहते हैं। उस समय आपकी आयु लगभग 08 वर्ष की थी और बचपन की उनकी नवीन, खाली सलेट पर हर घटना अक्षरश: सजीव रहने के लिए ही उनके मनो-मस्तिष्क पर अंकित हो गई। वह बताते हैं कि उनके पिता जी दूध का व्यवसाय करते थे और साथ ही उनका लकड़ी बेचने का कारोबार भी था।

31 अकतूबर को घर पर फोन आया कि इंदिरा गांधी को 02 सरदारों ने मार दिया है। चूँकि यह समाचार हर ओर इसी भाव से आगे बढ़ा कि यह हत्या सरदारों ने की है तो माहौल खराब होने की आशंका हो गई थी। संध्या होते होते कानपुर शहर में हालात खराब होने शुरू हो गए। उसी शाम को भैरों प्रसाद गुप्ता नाम का एक व्यक्ति, जो कि मेरे पिता जी का परिचित था, पिता जी के पास आया। उसने बताया कि सरदार जी कुछ लोग आपके घर को लूटने की योजना बना रहे हैं। और यह भी कहा जा रहा है कि वे आपके घर की महिलाओं को भी ले जाएंगे। इसलिए आप कोई व्यवस्था कर लीजिए, या फिर आप पंजाब चले जाइए। इस पर मेरे पिता जी ने इस बात को पूरी तरह से नकारते हुए कहा कि वह इतने वर्षों से यहाँ रह रहे हैं, फिर किसकी इतनी हिम्मत हो जाएगी यह सब करने की। इस पर उन्हीं गुप्ता जी ने कहा कि सरदार जी, मैंने बिल्कुल वही बात आपको बताई है जो हो रहा है। आप मेरी बात का विश्वास करो। उन्होंने बताया कि उन्हें उन लोगों के इरादे ठीक नहीं लगते। उन्होंने कहा कि इस पर भी यदि कोई ऐसी वैसी बुरी घटना, बात होती है तो मैं उससे आपको सतर्क करता रहूँगा। दूसरे ही दिन सुबह सवेरे लगभग 07 बजे वही गुप्ता जी कम्बल से

अपना मुँह ढांपे आए और बताया कि सरदार जी लोग इकट्ठे हो रहे हैं और वे लोग शस्त्र भी इकट्ठे कर रहे हैं। हालात बहुत खराब हैं। उनके अनुसार हमलावरों ने हमले का समय 10 बजे रखा है लेकिन आप इस बात को किसी भी प्रकार से कमतर न आंको।

अब जिस प्रकार के समाचार आ रहे थे, यह बात पूरी तरह से सत्य प्रतीत होने लगी थी। हमारा समूचा परिवार बहुत ही दहशत में था। कुछ ही दिन पहले पिता जी ने एक बैंक से 10,000 रुपये का एक ऋण भी लिया था। यह रुपए घर में ही पड़े थे। पिता जी ने ज़ल्दी-ज़ल्दी उन पैसों को अपनी जेब में रख लिया। हमारे मुहल्ले की पिछली ओर एक अंधेरा सा गोदाम बना हुआ था। सुबह 09.30 होते होते हमारे मोहल्ले वालों ने हमारे समूचे परिवार को उस गोदाम में बन्द कर दिया। कुछ ही देर बाद बलवाई भीड़ सचमुच में ही वहाँ पहुँच गई। हमारे घर के दरवाज़े बंद थे। भीड़ ने आते ही दरवाज़ों को तोड़ने की कोशिश की लेकिन दरवाज़े काफी मोटी लकड़ी के थे, इसलिए उनकी यह कोशिश नाकाम रही तो उस भीड़ ने पेट्रोल बम से हमला किया।

इतने में ही हमारे मोहल्ले के लोग वहाँ इकट्ठे हो गए और उन्होंने उस भीड़ को बताया कि सरदार जी तो कल ही पूरे परिवार सहित पंजाब चले गए। इस पर भी उन्हें विश्वास न हुआ। इतने में ही हमारे घर के सामने एक सरदार रतन सिंह का घर था। वह एक टेम्पो चालक था। इस पर कांग्रेस के एक स्थानीय नेता ने उसके गले में टायर डाल कर टेम्पो समेत उसको ज़िंदा जला दिया। यह एक बहुत ही भयानक दृश्य था। उनकी चीखें आज भी मेरे कानों में ताज़ा हैं। पास में ही हमारा लकड़ी का डिपो था। वो दंगाई भीड़ वहां का सारा सामान लूट कर ले गई और उन्होंने दूसरे दिन फिर से लूटने की योजना बनाई। 02 नवम्बर को दंगाई भीड़ पूरी तैयारी के साथ एक बार फिर से हमला करने के इरादे से इकट्ठा हुई लेकिन दूसरे दिन मोहल्ले का कोई भी व्यक्ति हमारी सहायता का लिए खड़ा न हुआ, आगे ना आया।

इस पर तुरंत ही हमने देखा कि वाहेगुरू जी की कृपा से कुछ लोग हाफ़-पेंट पहने, हाथों में लाठियां लिए आ धमके। मैंने अपने पिता जी से पूछा कि पिता जी, यह हाफ़-पेंट वाली कौन सी पुलिस है ? तब उन्होंने मुझे बताया कि

यह पुलिस नहीं, जनसंघ के लोग हैं। मुझे आज भी याद है कि उस समय जैसे भाजपा के नेता रविल पाटनी जी तथा आर.एस.एस. के स्वयंसेवक हाथों में लाठियां लिए पहुँच गए थे। ... और वो लोग हम सब को कह रहे थे कि आप चिंता न करें, भाजपा और आर.एस.एस. आप सिक्खों के साथ पूरी ताकत से खड़ी है। बस, केवल यही लोग थे जो हमारी हिम्मत बढ़ा रहे थे, बाकी दूसरे कांग्रेस के लोग तो लूट-मार करने का खूनी खेल खेल रहे थे।

आर.एस.एस. वाले लगातार मूवमेंट करते रहे, लाठियां पकड़े मार्च करते हुए स्पीकर द्वारा संदेश दे रहे थे कि सिक्ख समाज हिंदू समाज का ही एक अंग है। सिक्ख भाइयों को डरने की कोई आवश्यकता नहीं, हम चट्टान की तरह आपके साथ खड़े हैं। यह सब कुछ भुलाया नहीं जा सकता। हम जब तक जीवित रहेंगे, वह सब दृश्य भी हमारे साथ सजीव रहेंगे।

कुछ ही दिन के बाद माहौल शांत हुआ, धीरे धीरे हमारी ज़िंदगी भी फिर से आरम्भ हुई। इस पर भी मेरे बचपन की उस घटना ने मेरे जीवन पर बहुत गहरी छाप छोड़ी। हमें वह भी याद रहे जिन्होंने मृत्यु को ललकार कर, चुनौती देकर हमारी रक्षा की और वो भी याद हैं जिन्होंने साक्षात मृत्यु बनकर हमारे दर पर दस्तक दी। इस पर भी मारने वाले से बचाने वाला सदैव ही बड़ा होता है और सहृदय बन, जीवन का प्रकाश पुंज बन सदैव प्रेरणा देता है।

प्रकाश-पुंज

स. हरिंद्र सिंह जुनेजा

हरिंद्र सिंह जुनेजा दिल्ली की सीमा के साथ लगते बहादुरगढ़ शहर, जो हरियाणा के झज्जर ज़िला में है, में जन्मे व बड़े हुए। उनकी 10वीं की पढ़ाई लिखाई यहीं पर हुई। घर में माता-पिता के साथ-साथ एक छोटा भाई और एक बहन थे। पिता जी मास्टर प्रेम सिंह अध्यापक थे। उनका एक सुखी, हंसता-खेलता परिवार था। परंतु

ज़िंदगी कभी कभी ऐसी पल्टी मारती है कि जिसकी कल्पना करने मात्र से भी भय लगता है। कुछ दृश्य ऐसे भी होते हैं कि यदि कोई व्यक्ति सपने में भी उनकी कल्पना कर ले तो वह पसीने से तर- बतर, भीग कर घबराहट में उठ बैठता है और फिर निद्रा उसे छोड़ ही जाती है। लेकिन यदि यह सब कुछ वास्तव में ही उसकी आँखों के सामने ही घटित हो जाए तो..!! तब तो ज़िंदगी जीवन भर उसे सोने नहीं देती। ऐसी ही दुर्भाग्यपूरण घटना का वर्णन आज भी हरिंद्र सिंह को झकझोर के रख देता है। अपने घर और अपनी मिट्टी से किसी भी व्यक्ति का नाखुन-मांस का अटूट सम्बंध होता है। लेकिन यदि यह छोड़ना ही पड़ जाए तो उस दर्द को बयान करना शब्दों के बस में न होता है।

बस, हरिंद्र सिंह जी के परिवार को भी यह सब कुछ छोड़ के जाना ही पड़ गया और आज उनका परिवार कृष्णा पार्क, तिलक नगर, दिल्ली में रहता है। उनकी बहन की शादी हो गई और वह अपने ससुराल चली गई, छोटा भाई हरजीत सिंह आजकल गुरुग्राम में रहता है। हरिंद्र सिंह के दो बच्चे हैं। बेटा +2 में है जबकि बेटी वकालत की पढ़ाई कर रही है।

बीते दिनों को याद करते हुए हरिंद्र सिंह बताते हैं कि सन् 1984 में वह लगभग 15 वर्ष के और छोटा भाई 11 साल का था। वह स्वयं उस समय 10वीं कक्षा में पढ़ते थे। 31 अकतूबर 1984 का दिन भी आम दिनों की भांति ही था। 10वीं की परीक्षाएं चल रही थीं। उनके अनुसार वो परीक्षा के बाद स्कूल से बाहर आए। उनके घर का रास्ता बाज़ार में से होकर ही जाता था। लेकिन जैसे ही वह बाज़ार में पहुँचे, तो वहां सब कुछ सुनसान था। इतने में ही पिता जी दूर से आते दिखाई दिए। उन्होंने तेज़ी से आते-आते, बेचैनी से हमें कहा, ''जल्दी जल्दी घर चलो, जल्दी जल्दी।'' मैंने पूछा, ''क्यों ? क्या हुआ डैडी जी, क्या बात हो गई ?'' तब पिता जी ने बताया कि प्रधान मंत्री इंदिरा गांधी को किसी ने मार दिया है, इसलिए जल्दी-जल्दी घर चलो। हम लोग जल्दी-जल्दी में ही घर पहुँचे। इसी बीच धीरे धीरे दिल को दहलाने वाले समाचार आने लगे। पता चला कि गुस्से में भीड़ सिक्खों की दुकानों और घरों को जला रही है। सब ओर हाहाकार, त्राहि त्राहि फैल गई।

हम सब लोग एक भयानक सी दहशत में थे। माँ वाहेगुरू जी के आगे अरदास कर रही थी। तभी समाचार मिला कि थाणे के बिल्कुल पास ही एक सिख का टेंट-हाउस था। भीड़ ने उसके सारे बर्तन लूट लिए और टेंट-हाउस को आग लगा दी। पुलिस मूकदर्शक बन तमाशा देखती रही। उसने किसी को भी न रोका।

उस समय पुलिस की यह चुप्पी मानों तो उन आग लगाने वालों को प्रोत्साहित करने वाली थी। फिर पता लगा कि निकट की स्टेशनरी की दो दुकानें, सुंदर बुक डिपो और प्यारा सिंह बुक डिपो थीं, जिन्हें भीड़ ने आग लगाकर राख कर दिया। सरकारी समर्थन पा भीड़ बेरोक-टोक सिक्खों के जानो-माल का नुकसान कर रही थी। इससे बच जाने की आशा तो अमावस के चांद की भांति ही थी। निराश होकर मृत्यु से छुपने को बयान करने के लिए शब्दों के लिबास भी छोटे पड़ जाते हैं। परंतु अमावस के अंधेरे में एक जुगनू का टिम-टिमाना भी आशा की किरण जागृत कर देता है। परम-पिता परमात्मा बेअंत है, उस कठिन दौर में दिल को राहत देने की खबर आई, किसी ने बताया कि खाकी नेकरों में लाठियां पकड़े जनसंघ वाले सड़कों पर घूम रहे हैं और सिक्खों को बचा रहे हैं। हमारे मनों में भी आशा की किरण जागी। संध्या होते-होते आर.एस.एस. के इश्वरदास जी हमारे घर आए। उन्होंने कहा कि हमारी जान खतरे में है और हमें यहां से निकलना होगा। उनके कहे अनुसार हम सबने कम्बल ले कर अपने मूँह ढंक लिए ताकि किसी को हमारा पता न चले।

सुबह के लगभग 03 बजे का समय रहा होगा, बाहर घना-टोप अंधकार था और वो हमें छुपाकर अपने घर ले आए। मैं, मेरा भाई और बहन, माता-पिता सहित 13 दिन तक उन श्री इशवरदास जी के घर में छुपे रहे। यहां तक कि हमारे घर की देख-रेख भी संघ वालों ने ही की और हमारे घर को उन दरिंदों की वहिशी भीड़ से बचाया। हमारे मामा जी की दुकान को भी संघ वालों ने ही बचाया। धीरे धीरे जब माहौल शांत हुआ तो हम अपने घर लौटे। लेकिन अब वह घर बेग़ना-बेग़ाना सा लगता था, मन में एक प्रकार का भय घर कर गया था। इस एक घटना ने, राजनीति की गिरी हुई साज़िश ने केशधारियों और सहजधारियों के मनों में अब एक गहरी दरार डाल दी थी। इस कारण से पिता

जी ने बहादुरगढ़ छोड़ने का फैसला किया। आर.एस.एस. वालों ने बहुत ज़ोर डाला कि हम लोग बहादुरगढ़ छोड़ कर न जाएं, वे हमारे साथ हैं। परंतु अब पिता जी का मन भर चुका था। हमारे कुछ रिश्तेदार तिलक नगर, दिल्ली में रहते थे। यूँ भी वहाँ सिक्खों की काफ़ी आबादी थी। इसलिए हम तिलक नगर आ गए। नए सिरे से जीवन की यात्रा आरम्भ की। हमारा परिवार फिर से अपने पाँवों पर खड़ा हुआ। ...लेकिन वह दहशत भरा समय, साक्षात मृत्यु, और अपना घर छोड़ने के ज़ख्म आज भी रिस रहे हैं। इसके साथ ही मुश्किल की वह घड़ियां और उन दिनों में हमारी सहायता करने वाले भी याद हैं जिनकी बदौलत हमारे परिवार के जीवन की रक्षा हुई। उस भारी तूफ़ान के अंधड़ में ये संघ वाले ही थे जिन्होंने सिक्खों को हाथ देकर थामा और उनकी भाईचारे की उदाहरण तथा अपनेपन का भाव अभी भी हमारे दिलों पर, आज भी अंकित है।

हमलावर कांग्रेसी, मददगार संघी

स. हरिंदर सिंह मनोचा

सरदार हरिंदर सिंह मनोचा, हरियाणा राज्य के सिरसा नगर के निवासी हैं। 80 के दशक में पंजाब और दिल्ली में समय-समय पर घटित घटनाओं का सीधा प्रभाव हरियाणा पर भी पड़ता रहा क्योंकि पंजाब की समस्या की नींव भी हरियाणा के साथ पानी के बंटवारे और चण्डीगढ़ के झगड़े की ईंट से ही तैयार हुई थी। देश के निर्दोष नागरिकों ने अपनी जान और माल देकर इसकी क्षतिपूर्ति की और बहुत से लोगों को तो इसका खामियाज़ा पीढ़ियों तक झेलना पड़ा। राजनीति की शतरंजी चालें जीवित लोगों को मोहरा बना के चली गई। जीतने वाले तो बहुतेरे होंगे लेकिन हारने वाली सिर्फ़ आम जनता थी। भोले लोगों को क्या पता था कि वो जिन लोगों की बातों पर फूलों के हार चढ़ाते हैं, उनके गलों में फूल मालाएं डालते हैं, उन्हीं लोगों ने इन के गलों में जलते टायर डलवाने हैं, और फिर उन लोगों ने ही उनको बसों से उतार-उतार कर गोलियों से बींधना है। हरिंदर सिंह मनोचा और उनके परिवार ने भी उसी तपिश का ताप झेला है।

सन् 1984 का वही दौर याद करते हुए वह बताते हैं कि उस समय वह 22-23 वर्ष के युवा थे। परिवार में तीन भाई और 02 बहनें थीं। घर के सामने ही पिता जी की कपड़े की दुकान थी। मेरे बड़े भाई की आज़ाद मण्डी में आढ़त की दुकान थी। मैं खुद स्पेयर पार्टस सप्लाई करने का कारोबार करता था। 31 अकतूबर 1984 को जब श्रीमति इंदिरा गांधी की हत्या हुई, उस दिन बड़ा भाई किसी काम के लिए हिसार गया हुआ था। दिखावट में वह एक ऊँचा, लम्बा सिख जैंटलमैन था। रास्ते में ही माहौल खराब हो गया, दंगाइयों की भीड़ सिक्खों को ढूँड-ढूँड कर मारने लगी। परंतु भाई की किस्मत अच्छी निकली और वह बमुश्किल बच कर घर आ गया। इधर सिरसा में भी माहौल खराब हो गया।

स्थानीय कांग्रेसी नेता झुग्गी झौंपड़ी वालों और दूसरे गुण्डों की भीड़ को साथ लेकर दुकानों को लूटने लगे। हालात इतने भयानक थे कि जान बचानी बहुत कठिन कार्य था। समूचे शहर में सिक्खों की दुकानों को आग लगानी आरम्भ हो गई थी। हमारी गली में एक आँखों के डाक्टर सुरिंद्र कुमार मल्होत्रा रहते थे। वे आर.एस.एस. के कार्यकर्ता और संघ के ज़िला महासचिव थे। इलाके भर में उनका काफ़ी प्रभाव था। वह घर के नज़दीक ही अपनी प्रेक्टिस भी करते थे। हमारे साथ उनका बहुत प्यार था। मेरे पिता जी भी उनको अपना बेटा ही मानते थे। जब सिक्खों पर हमलों के समाचार आने लगे तो हमारी सहायता के लिए वही डाक्टर साहेब आगे आए।

उन्होंने सारे मोहल्ला-वासियों को कहा कि हमारी गली में सरदारों का एकमात्र घर है और इनकी सुरक्षा का दायित्व हमारा अपना है। न तो हम किसी गुण्डे को मोहल्ले में आने देंगे और न ही हमारे रहते कोई बदमाश ही यहाँ आ सकता है। यहाँ तक कि वहाँ जूतों का काम करने वाले पिता-पुत्र को अपने घर में रखकर उन्होंने उनकी जान की रक्षा की। डाक्टर साहेब ने हमारी भी यथा सम्भव सहायता की। संघ के दूसरे कार्यकर्ताओं ने भी उन लोगों की भरपूर सहायता की जिनका सब कुछ लूटा जा चुका था और जिनके पास कुछ भी नहीं बचा था। यह सहायता उस समय की गई जब घनी काली आंधी चल रही थी और प्रशासन भी उन क्रूर दंगाइयों के साथ था। पुलिस तो उन्हीं के साथ मिल कर सब कुछ करवा रही थी। भीड़ जो भी सामान लूट कर ले जाती, पुलिस उसमें से भी अपना हिस्सा ले लेती थी।

हालात बेकाबू होने के कारण शहर में कर्फ़यू लग गया। फिर कुछ दिनों के बाद हालात बदले, माहौल शांत हुआ। जीवन फिर से चलने लगा। भजन लाल की सरकार ने पाँच-पाँच हज़ार रुपए क्षतिपूर्ति की पेशकश की, लेकिन हमने उसे ठुकरा दिया। उस कड़वी याद को हमने अपने ही सीनों में दफ़न कर लिया, फिर से अपने पैरों पर खड़े हुए। बाद में मैंने पत्रकारिता भी की और 'सिरसा प्रहरी' नामक समाचार पत्र निकाला। मेरे बड़े भाई अब इस दुनिया से जा चुके हैं जबकि छोटा भाई अमृतसर में बैंक मैनेज़र है। हम अपने अपने परिवारों में खुश हैं। अच्छे जीवन का आनंद ले रहे हैं। परंतु कुछ घटनाएं मन में

घर कर जाती हैं, जिन्हें कभी भुलाया नहीं जा सकता है। लेकिन इस सब के बावजूद मुझे डाक्टर सुरिंदर कुमार जी का मानवीय जज्बा तथा अपनत्व याद आ जाता है, जो उस गहरी चोट पर मरहम के समान है।

मौत के मुँह से निकाला

स. हरजीत सिंह

सरदार हरजीत सिंह जी आजकल तिलक नगर, नई दिल्ली में रहते हैं। परिवार में उनकी धर्म-पत्नि के अतिरिक्त दो बच्चे- एक बेटा और बेटी हैं। हरजीत सिंह इनकम टैक्स आफ़िस, नई दिल्ली में नौकरी करते हैं। आज उनका एक हँसता खेलता परिवार है। लेकिन उनकी ज़िंदगी की यह यात्रा उतनी खुशनुमा, सुहानी न थी जितनी आज दिखाई देती है।

हरजीत सिंह जी ने यह जीवन सृजन करने के लिए दर्द का असीमित समुद्र पार किया है। कई बार ढंके हुए घावों की गहराई का ज्ञान ही नहीं हो पाता। सन 1984 में वह यमुना पार गांवड़ी गाँव में रहा करते थे। उस समय उनकी आयु लगभग 15-16 वर्ष की रही होगी। नम आँखों और भर आए गले से हरजीत सिंह जी उस गुज़र चुकी घड़ी में गुम से हो जाते हैं और उस दुर्घटना से जुड़े समूचे दृश्य उनके सामने ऐसे ताज़ा हो जाते हैं कि जैसे ये अभी कल ही की बात हो। दीपावली का त्योहार निकले अभी सप्ताह मात्र ही हुआ था। त्योहारों के समय में यूँ भी माहौल खुशनुमा हो जाता है। वह बताते हैं कि मैं उस समय अपनी मौसी जी के घर कालका जी गया हुआ था। 31 अकतूबर 1984 को बुधवार था और टीवी पर भारत-पाकिस्तान का क्रिकेट मैच चल रहा था। हम सभी मौसी जी के घर बैठे क्रिकेट मैच देख रहे थे कि अचानक ही टीवी पर

समाचार फलैश हुआ कि प्रधानमंत्री के गोलियां लगी हैं और उनको अस्पताल ले जाया गया है। फिर कुछ देर बाद मैच बन्द हो गया और दोबारा चालू न हुआ। उसके बाद टीवी पर दिन भर राम कथा धुन और कीर्तन ही चलते रहे।

लगभग 5-6 बजे पता लगा कि प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी की मृत्यु हो गई है। इसके कुछ देर बाद मेरे मौसा जी और उन का बेटा (उसकी आयु 22 वर्ष थी) मुझे छोड़ने हमारे घर आए और रात में वहीं रुक गए। उन दिनों गांवड़ी गाँव में सिक्खों के 25-30 घर थे। लेकिन हमारे घरों में सब का आपस में बहुत प्यार था कि किसी भी धर्म, जाति का आपस में कोई भी भेद न था। 01 नवम्बर की सुबह तक सब कुछ ठीक था लेकिन लगभग 09 बजे शोर-शराबे की आवाज़े आने लगीं।

पता चला कि एक बहुत बड़ी भीड़ गुरुद्वारा साहेब की ओर बढ़ रही है। हम सब लोग भी अपनी अपनी कृपाणें लेकर गुरुद्वारा पहुँचे। हम उस दंगाई भीड़ के बिल्कुल सामने थे और गुरू घर की सुरक्षा के लिए दिलेरी से डटकर खड़े थे। इतने में ही पुलिस भी वहां पहुँच गई। पुलिस के आने पर दंगाइयों की वह भीड़ बिखर गई। पुलिस वालों ने हमें आश्वस्त किया कि सब कुछ ठीक ठाक है, वे वहीं हैं और हम सब भी अपने-अपने घरों को चले जाएं। पुलिस द्वारा आश्वस्त किए जाने पर हम सब भी घरों को लौट आए। इसके बाद दंगाई भीड़ फिर से बड़ी संख्या में इक्ट्ठे हो गई और उन्होंने आते ही सिक्खों के घरों पर हमला करना शुरू कर दिया। 40-40, 50-50 लोग सिक्खों के घरों के आगे खड़े हो गए और वे लोग एक एक कर लोगों को घरों से निकाल-निकाल कर मारने लगे। एक अकेला आदमी इतने लोगों की भीड़ के सामने कर भी क्या सकता था ? हमारे आस-पड़ोस के लोग भी हमें बचाने में असमर्थ थे क्योंकि यह बड़ी भीड़ रासायणिक और दूसरे शस्त्रों से लैस थी।

वह केमीकल इतना घातक था कि दंगाई जब भी किसी के ऊपर उस से हमला करते तो वह तुरंत आग पकड़ लेता था और यह आग बुझाए बुझती भी न थी। सारे मोहल्ले वाले चाहते हुए भी कुछ न कर सके। वह सब दंगाई बाहर वाले थे, हमारे मोहल्ले का कोई भी व्यक्ति उन में न था। धीरे धीरे उन ज़ालिम

लोगों ने सभी जवान आदमियों को मार डाला और बाद में गुरूघर को भी आग लगा दी। अब दंगाईयों के निशाने पर बच्चे और महिलाएं थीं, जो बच गई थीं। हमारे पड़ोस में एक महिंद्र सिंह राणा जी रहते थे। उनके साथ हमारा बहुत प्यार और पारिवारिक निकटता थी। उनके तीन बेटे थे। सब से बड़ा ऋषि पाल था जो 22 वर्ष का था, दूसरा रणजीत था, जो उस दिन कहीं बाहर गया हुआ था और उनका तीसरा बेटा शमशेर सब से छोटा था। राणा जी तत्काल अपने बेटों के साथ वहाँ आए और हमें अपने साथ अपने घर ले गए। उन्होंने सभी दंगाइयों से कहा कि यह सब उनके अपने बच्चे हैं, कोई इन्हें कुछ नहीं कहेगा। वो लोग बड़ों को तो पहले ही मार कर खत्म कर चुके थे। मेरे पिता जी, मेरे मौसा जी और मेरे बड़े भाई को तो उन्होंने मेरे सामने ही जलाकर मार डाला था।

हमारी मृत्यु भी लगभग निश्चित मानी जा रही थी। उन निर्दयी लोगों ने हमें भी कहां छोड़ना था लेकिन राणा जी हमें अपने घर ले गए। उनके घर में हम मोहल्ले के 20-22 बच्चे और कुछ महिलाएं थीं। हम 02 दिन तक वहाँ रहे। इसके बाद सेना आ गई और सेना के लोग हमें अपने कैंप में ले गए। चूँकि वहां भी न केवल हमारी जान को ही खतरा था बल्कि हमारे साथ ही राणा जी के परिवार को भी दंगाइयों से खतरा था। कुछ दिनों के बाद हालात तो शांत हो गए, लेकिन हमारा तो सब कुछ उजड़ चुका था। इन्हीं आँखों ने अपनों को जीवित जलते और मरते देखा था। वह चीखें, वह दहशत इतनी भयानक थी कि उसकी याद आते ही रूह काँप उठती है। ... और जब सत्ताधारी पार्टी के सब से बड़े नेता की सोच ऐसी हो कि ''जब कोई बड़ा वृक्ष गिरता है, तो धरती कांपती है।'' ...तो उसके चेले चपाटे (पिछ्लग्गू) मानवता को कम्पाने में कोई कसर न छोड़ते हैं।

परंतु कहते हैं कि मारने वाले से बचाने वाला सदैव बड़ा होता है। ऐसा अत्याचार करने वालों में से कोई भी पकड़ा न गया। किसी को भी कोई सज़ा न हुई। कानून और न्याय जैसी कोई चीज़ दिखाई न दी। 1985 में तिलक नगर में मकान आबंटित हुआ और हम फिर हिम्मत करके फिर से अपने पाँवों पर खड़े होने में समर्थ हुए। बस, राणा जी व उनके परिवार जैसे लोगों द्वारा दिलों

को लगाई गई मरहम ही हमारी आत्मा का सहारा बनी जिसने हमारी ज़िंदगी को आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया।

फरिश्ते संघी

स. हरविंदर सिंह

सरदार हरविंदर सिंह जी दिल्ली निवासी हैं और अपने माता-पिता की अकेली संतान हैं। आपके पिता जी पी.जी. खोसला कम्प्रेशर कम्पनी में काम करते थे, जिनका अब स्वर्गवास हो चुका है और उनकी माता जी हरविंदर सिंह जी के साथ ही रहते हैं।

सन् 1984 में हरविंदर सिंह जी 12वीं कक्षा में कालका जी में पढ़ते थे। वे उस समय को याद करते हुए कहते हैं कि आपरेशन ब्लयू स्टार के समय से ही माहौल थोड़ा-थोड़ा सिक्खों के विरुद्ध बना हुआ था लेकिन किसी प्रकार का कोई बड़ा खतरा हो जाएगा, ऐसी आशंका की कोई बात न थी। 31 अकतूबर को गोली लगने के बाद श्रीमति इंदिरा गांधी अभी अस्पताल में ही थीं और उनके देहांत की घोषणा भी नहीं हुई थी। तब तक माहौल बिल्कुल शांत था। उन दिनों मैं सिर पर पटका ही बांधा करता था और पटके में ही कालका जी घूम कर आया था।

बाहर माहौल में किसी प्रकार की कोई उत्तेजना या कड़वाहट न थी, सब कुछ पहले ही की भांति चल रहा था। अगले दिन सुबह होते ही समाचार आने शुरू हो गए कि सिक्खों पर हमले हो रहे हैं। हमारे नज़दीक ही तुगलकाबाद एकस्टेंशन थी जहाँ रेलगाड़ियों का बड़ा आना जाना था। वहां से भी समाचार आए कि सरदारों को गाड़ियों से उतार-उतार कर मारा जा रहा है। ऐसे भयाक्रांत कर देने वाले समाचारों ने हमारे मनों में भी भय पैदा कर दिया।

अल्पसंख्यक होने के कारण ऐसा भय हो जाना स्वाभाविक भी था। इसलिए सभी ने यह निर्णय किया कि माहौल बहुत खराब है, इसलिए किसी को भी बाहर नहीं जाना चाहिए।

हमारे पिता जी तो पहले ही घर पर ही थे। यूँ भी इंदिरा गांधी जी के देहांत के तुरंत बाद ही उनकी फैक्ट्री में छुट्टी हो गई थी। परंतु अभी 03 दिन पहले ही उन्होंने अपनी हर्नियों का आपरेशन करवाया था, जिस कारण वे अभी छुट्टी पर ही चल रहे थे। फिर अचानक ही उड़ती-उड़ती खबर आई कि कांग्रेसी नेता लेबर क्लास के गुण्डा लोगों को शराब पिला-पिला कर उत्पात मचा रहे हैं और सिक्खों को ढूंड-ढूंड कर मार रहे हैं। हमारे निकट ही कोका-कोला की फैक्ट्री थी, जो कि सरदार चरणजीत सिंह की थी और वो खुद भी एक कांग्रेसी नेता थे। उसका मालिक सरदार होने पर जो भी लूटा जा सका, वहाँ से लूट लिया गया और बाकी जो बच गया था, उसे अग्नि-भेंट कर राख कर दिया गया।

हमारे घर के निकट ही आर.एस.एस. के श्री अरूण जी रहते थे। इस प्रकार के समाचारों से बेचैन होकर वो पिता जी उनसे मिले और उन्हें अपनी चिंता बताई। इस पर उन्होंने कहा कि सरदार जी आप चिंता न करें, यहां ऐसी कोई बात न है और बाकी माहौल तो बड़े शहरों में ही खराब हुआ है। यहाँ तो सभी लोग प्यार-मोहब्बत और भाईचारे से रहते हैं। आप किसी प्रकार की कोई चिंता न करें। भयभीत होने वाली कोई बात न है। परंतु इसके कुछ ही देरी बाद लगभग 11 बजे वहाँ के स्थानीय कांग्रेस नेताओं ने 25-30 लोगों के साथ हमारे घर पर हमला कर दिया। इन हमलावरों में से अधिकांश को तो हम जानते ही थे और वो सब शस्त्रों से सुसज्जित थे।

हमारा घर एक मंज़िल का था। घर में तीन कमरे और एक रसोई थी। घर के बाहर का दरवाज़ा भी लकड़ी का था। भीड़ ने आते ही घर का मुख्य दरवाज़ा तोड़ दिया और अंदर दाखिल हो गए। पिता जी ने हम सबको पहले ही कमरे में बन्द कर दिया था और वह स्वयं बाहर खड़े हो गए थे। हम अंदर से दंगाइयों से रहम के लिए मिन्नतें कर रहे थे कि हमारा कोई दोष नहीं है, इसलिए हमें मत मारो, हमें छोड़ दो। पिता जी भी उनके सामने हाथ जोड़ कर निवेदन कर रहे थे। लेकिन वो ज़ोर-ज़ोर से कह रहे थे कि आपने हमारी माँ

को मारा है, इसलिए सिक्खों को नहीं छोड़ना है।

शोर-शराबा सुनकर अरूण जी भी तत्काल अपने आर.एस.एस. के 10-12 साथियों के साथ वहाँ पहुँच गए और वो दंगाइयों को समझाने लगे। लेकिन वो लोग कुछ भी सुनने, समझने को तैयार ही न थे। अरूण जी उन दंगाइयों और पिता जी के बीच खड़े हो गए। पिता जी का बचाव करने में उन्हें भी कुछ चोटें आई। इतने में ही एक कांग्रेसी बड़े अहंकार से यह कहने लगा कि उन्होंने यहाँ सिक्खों को रहने नहीं देना है और हम अभी अभी इनके गुरूद्वारा और ग्रंथ साहेब को आग लगा के आए हैं। हमने इन्हें नहीं छोड़ना है। इस पर अरूण जी ने कहा कि यह तो आपने बहुत ही बुरा काम किया है। यह आपने गुरू ग्रंथ साहेब को नहीं, रामायण को जलाया है। तनिक पढ़ कर तो देखो उस में हर जगह पर भगवान राम का नाम ही लिखा हुआ है। हम मानते हैं कि जिन्होंने इंदिरा गांधी को मारा है वो बन्दे बहुत घटिया हैं लेकिन यह लोग तो अच्छे हैं। सालों से हमारे बीच रह रहे हैं... और तो और हिंदू-सिक्खों में तो आपस में कोई भेद-भाव नहीं है। यह हमारे ही भाई हैं। अब क्या भाई ही भाई को मारेगा ? लेकिन वो दंगाई तो बार बार मार देंगे, मार देंगे के ललकारे मार रहे थे और इसके अतिरिक्त कुछ भी सुनने को तैयार न थे। अंत में कोई वश न चलता देख वे कहने लगे कि यह लोग इस प्रकार यहाँ नहीं रह सकते हैं। यदि इनको यहाँ रहना है तो इनको अपने केश कटवाने पड़ेंगे अन्यथा हम इन्हें मार देंगे। और कोई दूसरा उपाय न देख उसी दिन शाम को अपने दिल पर पत्थर रख कर मेरे पिता जी और मुझे अपने केश कटवाने पड़े। इस पर भी खतरे की आशंका से हम 2-3 दिन अपने घर पर न रहे। आर.एस.एस. वर्करों ने हमें अपने साथ ही रखा। फिर 2-3 दिन बाद सेना आई और माहौल कुछ शांत हुआ और हम अपने घरों को लौट आए। लेकिन उस कठिन दौर में केवल आर.एस.एस. के कार्यकर्ता और कुछ दोस्त मित्र ही हमारे काम आए। अरूण जी और उनके साथियों ने हमारे साथ-साथ गांव के कुछ और सिक्खों को भी बचाया।

बंटवारे (विभाजन) की तरह उजड़ने न दिया

स. इंदरपाल सिंह

ग्वालियर भारत का एक प्रमुख शहर है। इतिहास की ओर नज़र दौड़ाएं तो सिंधिया राज परिवार के कारण ग्वालियर का नाम अंग्रेज़ों और आज़ादी के बाद की राजनीति में बोलता रहा है। वैसे सिक्खों के लिए भी यह एक महत्तवपूर्ण स्थान है। सिक्खों के छठे गुरू, श्री हरगोबिंद साहेब जी को जहांगीर ने यहीं के किले में कैद कर रखा हुआ था। और जब गुरू जी अपने साथ 52 पहाड़ी राजाओं को रिहा करवा के श्री अमृतसर पहुँचे तो उनकी रिहाई की इस याद को बंदीछोड़ दिवस के रूप में मनाया गया और यह परम्परा आज भी चली आ रही है, समूचा सिक्ख समाज विश्व भर में इसे ज़ोर-शोर से मनाता चला आ रहा है।

ऐसा कोई तो सम्बंध रहा ही होगा जो इंदरपाल सिंह जी के चाचा जी को लाहौर से यहाँ खींच लाया। उनके दादा जी का लाहौर में आढ़त का व्यवसाय था। अच्छा घर और अच्छा कारोबार था। परंतु सन् 1947 में ऐसी आंधी चली कि जिसने देश को तार-तार, छलनी कर दिया। लाहौर पाकिस्तान के हिस्से आया और तब वहाँ पर हिंदुओं और सिक्खों की हत्याएं शुरू हो गई। वो लोग अपनी जानें बचा के, अपने घर-कारोबार, सब कुछ छोड़कर यहाँ ग्वालियर आ गए। व्यवसाय के तौर पर उन्होंने सूखे मेवा का काम शुरू किया और अब यही काम इंदरपाल सिंह जी भी अपने भाई के साथ करते हैं। उनकी एक छोटी बहन भी है, जो ग्वालियर में ही ब्याही हुई हैं। सिंह के 02 बेटे और एक बेटी हैं। जैसे कि हम सभी जानते हैं कि यहाँ सब गोल है, यानि धरती गोल, चंद्रमा गोल, सूर्य गोल है और शायद इसी कारण से समय का चक्र भी गोल है। और जैसे घड़ी की सूइयां घूम फिर कर, चक्कर काट कर फिर अपने स्थान पर आ जाती हैं। सोचा न था कि वैसे ही हालात फिर से पैदा हो जाएंगे, जो 1947 में पैदा हुए

थे। लेकिन सब कुछ अपनी इच्छानुसार, सोच लेने मात्र से तो न होता है। समय कब किस को उसके घुटनों पर बैठने के लिए विवश कर दे, यह पता ही न चलता है।

31 अकतूबर 1984 को श्रीमती इंदिरा गांधी की हत्या हो गई। तब तक सब ओर हालात ठीक-ठाक थे। सब के मनों में अकस्मात हुई इस मृत्यु, दुर्घटना के कारण हैरानीभरा कौतूहल था। लेकिन माहौल में किसी प्रकार कोई तनाव, नफ़रत या उन्माद जैसा कुछ भी न था। सब कुछ प्रतिदिन की भांति चल रहा था। हमारे मन-मस्तिषक पर किसी भी प्रकार का कोई भय या फिर असुरक्षा की भावना न थी। प्रतिदिन की भांति हम उस रोज़ भी दुकान बढ़ा कर घर आए लेकिन रात होते होते सिक्खों पर हमलों के समाचार आने लगे। खैर, हमें अभी तक सब कुछ ठीक ही लगता दिखाई देता था। लेकिन हमारे मन का यह भुलावा बहुत देर तक कायम न रहा क्योंकि रात्रि के गर्भ में से कौन सा सूर्य पैदा होगा.. यह कोई न जानता था। और अगले ही दिन सुबह तक हम तक जो समाचार पहुँचा उसने हमारे पैरों से मिट्टी ही निकाल कर रख दी। पता चला कि सुबह करीब 6-7 बजे दंगाइयों की भीड़ हमारी दुकान पर आई। वह लोग दुकान का ताला तोड़कर सामान लूट कर ले गए। और जो बचा रह गया, उसे फर्नीचर सहित आग लगाकर जला दिया गया।

दुकान जलने की खबर आग की भांति हमारे तक पहुँची और इसी तरह यह हर ओर फैल गई। शस्त्रों से लैस भीड़ के भय से उस ओर जाना खतरे से खाली न था। हमारा परिवार ऐसा दूसरी बार अनुभव कर रहा था। ऐसा पहली बार 1947 में हमारे साथ घटित हुआ था। तब की भांति आज भी हमारे जीवन को खतरा था। भीड़ के दिल को कंपा देने वाले नारे हमारे मनों में भय पैदा कर रहे थे। हम लोग लाहौर से यहाँ आए, अब यहाँ से निकल कर कहाँ आश्रय ढूँडें ? लेकिन उस समय जब मौत हमारे सामने खड़ी दिखाई दे रही थी, तभी हमारे पड़ोस में रहने वाले राम प्रकाश नागपाल, उनके भाई भजन सिंह नागपाल, लेख राज बत्रा, देस राज बत्रा और राम सरूप नागपाल जी हमारे पास आए। ये सभी आर.एस.एस. के कार्यकर्ता थे। हमारे जीवन पर खतरा भांपते हुए यह लोग हमें अपने साथ ले गए। घर को ताला लगा के हम इनके साथ चले गए। हालात

बहुत खराब थे। इस पर भी अपनी जान की परवाह न करते हुए इन लोगों ने हमारी रक्षा की।

हमारा परिवार 2-3 दिन इनके साथ रहा। कुछ शांति होने पर हम अपने घर को लौटे। धीरे-धीरे 5-7 दिन का बाद माहौल शांत हुआ। हमारी दुकान तो जल कर राख हो चुकी थी। अब हमारे पास कुछ भी काम करने लायक न था। सरकार का इस नस्लकुशी में सीधा सीधा हाथ था। पुलिस सब कुछ देखते हुए भी मूकदर्शक बनी रही। हम विश्वास करें भी तो किस पर ? निराश मन भगवान को भी ताने मार रह था। इतने वर्षों बाद फिर वही हालात, ग्वालियर भी अब लाहौर जैसा लग रह था। इससे आगे हमें कहाँ जाना है, यह भी सूझ न रहा था। लेकिन इन भगवान के भेजे बंदों के प्यार के भरोसे हमने दिल को, हिम्मत दी और उसी साहस से फिर से काम आरम्भ किया। सरकार से कोई क्षतिपूर्ति न मिली। बस इन नेक रूहों के साथ के सदके हम दश नाखुनों की किरत कर फिर अपने पैरों पर खड़े हुए। सत्य है कि अंधेरा भले ही कितना भी घना हो, रोशनी की एक ही किरण उसे अपनी एकमात्र अंजुलि से ही उस अंधेरे को निगल जाती है। और इन्सानियत की ऐसी किरण विलक्षण स्रोत बन भविष्य में भी दुनिया को प्रेरित करती रहेगी।

सरकारी गुण्डे और रक्षक संघी

स. जसबीर सिंह

सरदार जसबीर सिंह, लाल कवारटर, कृष्णा नगर दिल्ली में रहते हैं। जसबीर सिंह जी के पीछे से रावलपिण्डी के रहने वाले हैं। जब 1947 में भारत विभाजन पर उधर माहौल खराब हुआ, तब हिंदुओं और सिक्खों को नया बना पाकिस्तान छोड़ना पड़ा। जिस कारण दादा जी परिवार को लेकर दिल्ली आ गए। पहले आपका परिवार चांदनी

चौक में रहता था, लेकिन 1963 में समूचा परिवार कृष्णा नगर आ गया जो कि पूर्वी दिल्ली का इलाका है। जसबीर सिंह जी के पिता जी कपड़े का व्यवसाय करते थे और इन्होंने भी वही व्यवसाय अपनाया। जसबीर सिंह जी की एक बहन और तीन भाई हैं। प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी की हत्या के समय जसबीर सिंह जी 15-16 साल के थे। दिल्ली में हुई इस दुर्भाग्यपूर्ण घटना के बाद हुए सिक्ख कत्लेआम का केन्द्र भी दिल्ली ही बना। धुएं के उठते गुब्बार आग में उलझ गईं चीखों ने दिल्ली को ऐसा कलंकित किया कि जिससे इतिहास आज भी शर्मसार है। सरदार जसबीर सिंह के परिवार के लिए 37 वर्षों के बाद दिल्ली भी दूसरा रावलपिण्डी बनने को तैयार खड़ी थी। और बदकिस्मती से उनका इलाका भी पूर्वी दिल्ली में पड़ता था जो कि कांग्रेस के बड़े नेता एच.के.एल. भगत का इलाका था। एच.के.भगत उस समय केन्द्र सरकार में सूचना और प्रसारण विभाग का कार्य देखते थे। और उन दिनों भगत को दिल्ली के बादशाह के तौर पर जाना जाता था। उस समय उन के गुण्डों ने अलग-अलग स्थानों पर लोगों से मार-काट की। कृष्णा नगर के निकटवर्ती इलाकों में, जैसे कि त्रिलोकपुरी, सीमापुरी में बहुत सी हिंसा हुई। सिक्खों को ढूँड-ढूँड कर मारा जा रहा था। जसबीर सिंह का परिवार भी इसी दहशत में था। लेकिन अब किया भी क्या जा सकता था!

उस निर्दयी और हिंसक दंगाइयों की भीड़ से बचने का कोई उपाय और आशा भी नहीं थी। और उस कठिन दौर में सामने आए श्री मदन लाल खन्ना जी, जो कि आर.एस.एस. के कार्यकर्ता थे। वह उनके परिवार को अपने साथ अपने घर ले गए और मोहल्ले के दूसरे परिवारों की सुरक्षा के लिए सभी गलियों में नाके लगवा दिए गए। संघ के नौजवान कार्यकर्ता हाथों में लाठियां पकड़े कृष्णानगर की ओर आने वाले सभी रास्तों पर दिन-रात पहरा दे, रक्षा करते रहे। उन्होंने किसी भी अनजान व्यक्ति को मोहल्ले में घुसने न दिया। पूरे मोहल्ले ने आपस की सांझ और एकता का परिचय दिया। जहाँ लाल कवारटर के आस-पास भयानक कत्लेआम हुआ, इस एकता ने यहाँ कृष्णा नगर में ऐसा कुछ न होने दिया।

सरदार जसबीर सिंह जी का परिवार तीन दिन तक मदन लाल खन्ना जी

के घर पर रहा। फिर धीरे-धीरे माहौल शांत हुआ और लोगों ने अपनी दुकानें खोलीं। भय तो अब भी बहुत अधिक था। पूरी दिल्ली इसकी साक्षी थी। हमारे बच जाने की भी कोई आशा न थी, लेकिन हमारा जैसे तैसे बचाव हो गया। आज भी उस समय की घटनाओं को याद करते हुए सरदार जी का मन भावुक हो जाता है। उस समय खन्ना जी तथा मोहल्ले वालों द्वारा दिए गए साथ व सहयोग के लिए हमारा दिल उनके प्रति आभार प्रकट करने के लिए भर आता है। जहाँ पूरी दिल्ली में सिखों का भारी नुकसान हुआ, वहीं सरदार हरजीत सिंह और उनके परिवार के लिए यह सांझ और प्यार सारी उम्र भर के लिए गहने की तरह बना।

मुश्किल घड़ी में साथ खड़े हुए

स. कुलवंत सिंह

हरियाली से भरपूर पहाड़ियों की छाती पर बसा हुआ पंजाब का पड़ोसी प्रांत है हिमाचल प्रदेश। यह प्रांत भी कभी पंजाब राज्य का भाग हुआ करता था और पंजाबी बोलने व समझने वाले लोग आज भी यहाँ इस प्रांत के हर नुक्कर कोने में मिल जाते हैं। मनमोहक प्राकृतिक नज़ारे, साफ़-सुथरी आबो-हवा मानों तो पर्यावरण का ब्राण्ड एम्बेसेडर। शायद इसीलिए ऋषियों, मुनियों, संतों ने इस मिट्टी को मंदिर मानकर यहीं पर आत्मा का मिलान परमात्मा से कराया। और इसी शांतमय वायुमण्डल ने यहां के निवासियों के स्वभाव को भी अपनी ही भांति तैयार किया। शताब्दियों से यह क्षेत्र भ्रमण करने वालों का पसंदीदा क्षेत्र रहा है। जब देश के दूसरे क्षेत्र गर्मी की मार से झुलस रहे होते हैं, तब ठण्डी वादियों में प्राकृतिक सौंदर्य का आनंद लेने के लिए लोग इसी क्षेत्र में भ्रमण के लिए आते हैं।

जिस क्षेत्र पर मौसम की किसी भी प्रकार की तपिश कोई प्रभाव न होता है, 1984 की तपिश यहाँ भी अपने ताप का प्रभाव छोड़ गई। भले ही दिल्ली की भांति यहाँ कोई अधिक नुक्सान न हुआ, छुट-पुट असहज घटनाएं तो यहाँ पर भी हुई और उन्हीं घटनाओं की ध्वनि आज हमें इस क्षेत्र के मण्डी शहर तक खींच लाई। यहाँ पर हमारी भेंट सरदार कुलवंत सिंह जी के साथ हुई जो कि आजकल मण्डी में ही कपड़े की एक दुकान चलाते हैं। 71 वर्षीय कुलवंत सिंह जी नामधारी सिक्ख हैं और परम्परागत नामधारी पहनावा ही पहनते, अपना नित-नेम करते हैं। मण्डी शहर में आज भी नामधारी समाज की अच्छी खासी आबादी है, जिन के अच्छे व्यवसाय हैं और प्रांत की प्रगति में वे लोग अपना योगदान कर रहे हैं।

सरदार कुलवंत सिंह जी का जन्म मण्डी ज़िला के ही एक छोटे से कस्बे थुनाग में हुआ और वे वहाँ से आकर यहीं बस गए। वह कस्बा भी अब एक तहसील बन गया है। कुलवंत सिंह जी का परिवार सन् 2000 तक थुनाग में ही रहा। उनके तीन बच्चों में एक सुपुत्री और दो सुपुत्र हैं और वे सभी शादीशुदा हैं, सम्मानजनक जीवन जी रहे हैं। थुनाग की सुंदर पहाड़ियां, ठण्डा मौसम और वो स्मृतियां उन के पास आज भी सजीव हैं। उन्होंने अपने जीवन का काफ़ी समय वहाँ ही बिताया। उनके बच्चों की शिक्षा-दीक्षा भी वहीं पर हुई। परंतु दुर्भाग्य से यहाँ की एक कटु याद भी उनके खुशनुमा जीवन के साथ जुड़ गई।

समय की घड़ी को पीछे घुमाते हुए वे बताते हैं कि 31 अकतूबर 1984 को प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी की हत्या हो गई। 01 नवम्बर को थुनाग में कुछ लोगों ने अफ़वाह फैला दी कि मण्डी में कुछ लोग सिक्खों को मार रहे हैं और इससे कुछ लोग थुनाग में भी अति उत्साहित हो गए। फिर उनका साथ देने के लिए कुछ शरारती लोग बस में भर कर थुनाग में आ धमके। वो सिखों की दुकानों में लूट-खसूट करने लगे। इतने में ही उस मौके पर श्री सोहन सिँह शास्त्री जी (जो आर.एस.एस. के वर्कर भी हैं) भी आ गए। श्री शास्त्री जी एक स्कूल में अध्यापक थे और मेरे बच्चे भी उन का पास ही पढ़ते थे। उन्हीं के साथ मौके पर ही तहिसीलदार शिव लाल कपूर जी भी पहुँच गए। इन दोनों ने दंगाई भीड़ को रोका और उन्हें समझा बुझाकर कहा कि वे ऐसा बुरा काम न

करें। लेकिन भीड़ कुछ भी सुनने को तैयार न थी। तभी इस बहसबाज़ी में बस का ड्राइवर भी इन दोनों को बोलने लगा कि अगर उन दोनों ने उन्हें रोका तो देखना कि वे उनका हाल भी दूसरे लोगों के हाल जैसा ही करेंगे। इस पर भी ये दोनों उस भीड़ के आगे डट कर खड़े रहे और सब को मनाने की कोशिश करते रहे। कोई भी तर्क उन्मादी भीड़ रोकने के लिए काफ़ी न था, और वह भीड़ भी कुछ भी सुनने को तैयार न थी। तहसीलदार की अफ़सरी भी इस भीड़ के आगे विवश थी। क्योंकि उन दिनों थुनाग में कोई पुलिस थाणा भी न होता था इसलिए किसी प्रकार की पुलिस की सहायता प्राप्त होने की भी कोई आशा न थी।

ऐसे ही प्रोत्साहित होकर भीड़ भयरहित होकर दूसरी ओर आगे बढ़ गई और उन्होंने पेट्रोल की केन मंगवा ली। एक सरदार की दुकान पर पेट्रोल छिड़कने लगे तो तहसीलदार जी ने डरते डरते उन्हें ऐसा न करने के लिए कहा। उन्होंने उन्हें समझाया कि ऐसा करने से सारा बाज़ार ही जल कर राख हो जाएगा। उस भीड़ में कुछ ऐसे स्थानीय दुकानदार भी थे जिनकी दुकानें पास पास ही थीं। इस कारण से वह भीड़ लौट गई। लेकिन इसके बाद सायंकाल को लगभग 04 बजे 400-500 की भीड़ दूसरी बार फिर से आ गई। यह लोग थुनाग के न थे। भीड़ ने आते ही एक सिख दुकानदार की दुकान के शटर पर पत्थर दे मारा, जिससे शटर टेढ़ा हो गया। भयभीत होकर वह सिक्ख दुकानदार जंगल की ओर भाग गया। तहसीलदार शिव लाल कपूर, जो मेरा किराएदार भी था, ने मुझे सलाह दी कि कहीं वह भीड़ मेरा जानी, जिस्मानी नुकसान न कर दे इसलिए मैं वहाँ से चला ही जाऊँ।

उसने मुझे कहा कि वह भी असमर्थ हैं तथा कोई भी उनकी सहायता न कर सकता है... और उनका भय सत्य था। ऐसा सुनते ही मैं बिना समय गंवाए अपने परिवार सहित जंगल की ओर निकल गया। अब बचने का कोई रास्ता न था। जाते भी तो कहाँ ? दूर जंगल में कहीं एक घर देखा। दरवाज़ा खटखटाने पर घर का मालिक बाहर आया। हमने उसको अपनी पूरी आप-बीती सुनाई और उससे वहाँ रात्रि बिताने के लिए आश्रय मांगा। लेकिन उसने डर के कारण हमारी कोई सहायता न की और कहा कि सरदार जी आपके कारण हम सब भी

मारे जाएंगे। हम आपकी कोई सहायता नहीं कर सकते। उसने कहा कि आगे जंगल में चले जाओ, शायद वहाँ कोई ठहरने का स्थान मिल जाए। हम आगे बढ़ते गए और फिर दूर जाने पर एक घर दिखाई दिया। हमने उन्हें भी अपनी पूरी आप-बीती सुनाई। डर के मारे वह घर का स्वामी भी इंकार करता रहा लेकिन उसकी घरवाली ने कहा, आप चिंता न करो, जो होगा देखा जाएगा। आप हमारे पशुओं वाले कमरे में छुप जाओ। इस पर मैं और मेरा परिवार एक लेम्प लेकर उनके पशुओं वाले कमरे में चले गए और रात भर जागते रहे, वाहेगुरू से ज़िंदगी की भीख माँगते रहे। बड़ी मुश्किल से रात बीती और दूसरे दिन हम अपने घर को लौटे।

घर पर तहसीलदार (हमारा किराएदार) अपना सामान बांध रहा था। हमें देखते ही वह बोला, ''सरदार जी, आपके घर में मुझे भी खतरा है। मैं यहां से जा रहा हूँ।'' उनकी यह बात सुनकर हम और भी घबरा गए, भय-भीत हो गए। हम यह सोचने के लिए विवश हो गए कि यदि यहाँ पर इलाका मजिस्ट्रेट भी सुरक्षित न है तो हमारे बचने की क्या आशा हो सकती है ? हमने तत्काल ही थुनाग छोड़ने का निर्णय कर लिया और पहनने के 2-2 कपड़े लेकर निकल पड़े। उन दिनों यात्रा के बहुत सीमित साधन होते थे। पहाड़ी इलाकों में आना जाना आज की भांति कोई आसान काम न था। बहुत सी यात्रा पैदल चलते चलते ही करनी पड़ती थी। हम भी पैदल ही चलते रहे, चलते रहे और जैसे तैसे करके बस लेकर एलनाबाद (हरियाणा) आ गए।

एलनाबाद में मेरी ससुराल थी और जब तक शांति न हुई, हमने कुछ समय उनके घर पर ही गुज़ारा। बाद में हम अपने सतगुरू महाराज की कृपा से फिर से पहाड़ों में लौट आए। फिर से अपना व्यवसाय आरम्भ किया। बच्चों को भी वहीं पर पढ़ाया। शास्त्री जी जैसे सज्जनों का साथ मिला और आज मैं और मेरा परिवार सम्मानजनक जीवन जी रहा है। इस पर भी कहीं न कहीं, कभी न कभी वह दर्द फिर से छलक ही आता है। हम तो अपने पैरों पर खड़े हो गए लेकिन जिन्होंने हमारे साथ बुरा किया था, उनका अंजाम भी हमने अपनी आँखों से ही देखा। और तसल्ली इस बात की है कि जहां अंधेरा था, वहीं सोहन सिंह

शास्त्री जैसे रहबरों सी प्रकाश किरण भी मौजूद थी। जो सदैव हमें नेकी और इंसानियत के रास्ते पर चलने के लिए प्रेरित करती रहेगी।

बालमन पर गहरे चिन्ह

स. हरजीत सिंह जुनेजा

हरजीत सिंह जुनेजा जी सरदार हरजिंदर सिंह जुनेजा जी के छोटे भाई हैं। सन् 1984 में उनकी आयु 11 वर्ष थी। अपने जीवन का वह कभी न भूलने वाली स्मृतियां आज भी उनके मन में कटु याद का रूप में यथावत चिन्हित हैं। वह भी अपने भाई-बहनों व माता-पिता के साथ 13 दिन तक संघ के कार्यकर्ता श्री इश्वर दास जी के घर रहे, जिनकी सहायता के कारण कठिनाई के उस दौर में उनका परिवार बचा रहा। उस घटना के बाद उनका परिवार बहादुरगढ़ (हरियाणा) से तिलक नगर, दिल्ली आ गया। सरदार हरजीत सिंह जी विगत 05 वर्ष से गुरूग्राम (हरियाणा) में रह रहे हैं और यहीं पर अपनी दवाओं की दुकान चला रहे हैं।

हरजीत सिंह जी बताते हैं, ''भले ही उन दिनों में मैं सब से छोटा था और बहुत मासूम भी। लेकिन उन कुछ पलों का खौफ़ अभी भी मेरे मन मस्तिष्क पर अंकित है।'' मुझे यह नहीं समझ आ रहा था कि यह सब मार-काट हो क्यों रही है ? हमारा दोष क्या है ? अध्यापक होने के नाते मेरे पिता जी बहुत ही सत्कार योग्य व्यक्तित्व थे क्योंकि इलाके भर के बहुत से बच्चे और उनके पिता-चाचा उनसे ही तो पढ़े थे। इस सब के बावजूद एक समूह उनकी हत्या करने पर क्यों तुला हुआ है। हमारे शरीर का रोम-रोम इश्वर दास जी और उनके साथ दूसरे स्वयंसेवकों के बहुत कृतज्ञ है जिनके सदके हमारी जान बच सकी।

घरों के बाहर पहरा देकर जान बचाई

स. मनमोहन सिंह

दुनिया की सब से प्राचीन सभ्यता के मालिक हिंदुस्तान ने वह समय भी देखा है जब एक रेखा खींच कर देश के दो भाग, टुकड़े कर दिए गए और फिर विश्व के इतिहास में सब से बड़ा खौफ़नाक कत्ले-आम हुआ। मनमोहन सिंह जी के परिवार ने वह काला दौर भी झेला। उनका परिवार सब कुछ गुजरांवाला (अब पाकिस्तान में) में छोड़ कर यहां ग्वालियर आ गया। दो वर्ष के मनमोहन सिंह जी ने अपना बचपन और जवानी इसी ग्वालियर के मैदायी मोहल्ले में बितायी। उजड़ के आए जिस घौंसलेनुमा मकान में सुकून मिलता था, उसी को इस 1984 की आंधी ने झकझोर दिया।

सरदार जी की कांपती हुई आवाज़ अतीत की डयोढ़ी में खड़े होकर देखती है कि इंदिरा गांधी की हत्या हो चुकी थी। सब कुछ पहले ही की भांति यथावत चल रहा था। लोगों की निगाहों में और उनके व्यवहार में किसी भी प्रकार का कोई परिवर्तन न था और उनमें किसी प्रकार की कोई उत्तेजना थी.. इस का कोई आभास भी न होता था। इसलिए किसी प्रकार की कोई अनहोनी या खतरे की आशंका ही नज़र नहीं आती थी। पहली नवम्बर का दिन था और मैं घर पर ही था। इतने में लोगों ने बताया कि भीड़ ने हमारी दुकान को आग लगा दी है। ऐसा सुनकर मेरे तो पाँवों क्के नीचे ज़मीन ही निकल गई। 1947 के विभाजन का दर्द तो मैंने अपने माता-पिता से ही सुन रखा था और ऐसा कुछ भी कभी विचार में भी न आया था कि वैसा सब मुझे भी एक दिन देखना पड़ेगा। दुकान जल जाने की बात सुन कर कुछ मोहल्ले वाले भी घर पर आ गए और आशवस्त करते हुए बोले कि रुको हम जाते हैं और जो बन पड़ा हम करने का प्रयास करेंगे। लेकिन मैंने उनको रोक दिया। क्योंकि आग तो अब लग ही

चुकी थी, किसी साथी का कोई जानी नुकसान न हो जाए अथवा यदि किसी को कोई चोट आदि आ गई तो और भी बड़ी बिपदा आ जाती। हमारे मोहल्ले में ही एक सूरी परिवार है, परिवार के प्रमुख श्री द्वारिका प्रसाद जी, जो संघ के कार्यकर्ता थे का मेरे पिता जी से बहुत प्यार था। हम उन्हें चाचा जी कह के बुलाया करते थे। सिखों के विरुद्ध देश के बाकी स्थानों पर हो रही हिंसा को देखते हुए द्वारिका प्रसाद जी हमें अपने घर ले गए। हम उनके घर में 7-8 दिन रहे, वह भी तब तक कि जब तक माहौल ठीक न हो गया। इस दौरान पूरे मोहल्ले ने गलियों में अपने अपने घरों की छत्तों पर चढ़ कर कड़ा पहरा लगा दिया और किसी भी गुण्डे को गलियों में घुसने तक न दिया। अब तक मोहल्ले की एकता का अहसास उन बदमाशों को भी हो चुका था और वो समझ चुके थे कि एक बार वहां गए तो वापस लौट कर न आ सकेंगे। इस कारण किसी की हिम्मत ही न हुई। लेकिन ये सब उन दिनों आसान भी न था, वह समय ही कुछ ऐसा था। सरकार की शह प्राप्त ऐसे गुण्डा तत्वों की हिम्मत बढ़ी हुई थी। प्रशासन की शह तो इतनी थी कि उन दंगाइयों ने पंजाब एण्ड सिंध बैंक की शाखा को भी लूटने की कोशिश की थी। लेकिन वे लोग उसके ताले न तोड़ सके थे, जिस कारण बैंक लुटने से बच गया था। इस पर भी सब लोग जानते थे कि पुलिस कप्तान ने भीड़ को निश्चित समय दिया था कि वे जो लूटना चाहते हों, लूट लें। जैसे ही हालात सुधरे, हम अपने घरों को लौट आए। दुकान का तो अब कुछ भी न बचा था। सब कुछ जल कर राख हो चुका था। उन दिनों दुकानों का बीमा तो होता न था। सरकारी सहायता के नाम पर 2000/- रुपए मिले, जो कि नुकसान के मुकाबले कुछ भी न थे। उन रुपयों को भी लेने को मन तो न करता था लेकिन इस आशा में ले लिए कि ऐसा करने से सूची में नाम तो दर्ज हो ही जाएगा और यदि भविष्य में कोई और सहायता मिलेगी तो उस पर हमारी पात्रता बनी रहेगी। श्री द्वारिका प्रसाद जी तथा मोहल्ले के ही कुछ दूसरे लोगों की बदौलत ग्वालियर हमारे लिए दूसरा गुजरांवाला न बना। दुकान को फिर से चालू किया और संघर्ष के उस दौर से निकल कर अब हम एक सम्मानजनक जीवन यापन कर रहे हैं। मेरे तीन बेटे और तीन ही बेटियां अपने गृहस्थ जीवन में सुखपूर्वक रह रहे हैं। समय कभी ठहरता नहीं, लेकिन यादों के रूप में दर्ज हो जाता है मनों में.... डर बन कर, घृणा बन कर, प्यार बनकर अथवा प्रेरणा बन कर।

अपने घर में रखकर जान बचाई

स. निरमल सिंह

तिलक विहार, नई दिल्ली के निवासी सरदार निरमल सिंह जी पहले अपने परिवार सहित गाँव गांवड़ी, यमुना पार के इलाके में रहते थे और सन् 1984 की सिक्ख नस्लकुशी ने उनके सिर की छत्त के साथ-साथ और भी बहुत कुछ छीन लिया। 1985 में सरकार ने तिलक नगर में दंगे के पीड़ित परिवारों को जो मकान आबंटित किए थे, आजकल उसी मकान रूपी रैन बसेरे में जीवन यापन कर रहे हैं। इस पर भी अतीत में उन्हें जो भी घाव मिले, वो न तो अब तक अभी भरे हैं और न ही कभी भरेंगे। बस पीड़ा बन कर निरंतर रिसते ही रहेंगे। सरदार निरमल सिंह जी भरे मन से बताते हैं कि उस समय उनकी उम्र लगभग 14 साल की थी। परिवार में माता-पिता जी व बड़ा भाई भी थे। भाई की उम्र उस समय 18 वर्ष की रही होगी। पिता जी का पहाड़गंज में खराद का काम था। बड़े भाई ने भी पढ़ाई छोड़कर यही काम सीखना आरम्भ कर दिया था। अभी पिछले सप्ताह ही दीवाली भी थी। मौसम में भी कुछ ठण्डक आ चुकी थी। उन दिनों सब घरों में टीवी तो होता न था। समाचारों और मनोरंजन का मुख्य स्रोत रेडियो और समाचार पत्र ही होता था। 31 अकतूबर को श्रीमति इंदिरागांधी की हत्या के बारे में हमें रेडियो से ही पता चला। दूसरे दिन स्कूल, कालेज और सभी दुकानें बंद थे। मैं भी घर पे ही था और बड़े वीर जी और पिता जी भी काम पर न गए। नागपुर से मेरे मौसा जी भी आए हुए थे जो कि अपने छोटे बेटे को विदेश जाने के लिए छोड़ने का लिए दिल्ली आए थे। अचानक ही मौसी जी का बेटा विदेश जाने से पहले अपने किसी मित्र को मिलने के लिए चला गया। छुट्टी होने के कारण हम सभी अपने घर की छत्त पर धूप का आनंद ले रहे थे। 10 बजे के लगभग निकट में से ही हमने शोर शराबे की आवाज़ों को सुना।

शोर शराबे से पता चला कि भीड़ ने निकटवर्ती गुरुद्वारा साहेब पर हमला

कर दिया। पिता जी, वीर जी और दूसरे निकटवर्ती पड़ोसी इकट्ठे होकर कृपाणें लेकर गुरुद्वारा साहेब पहुँचे तो सबने मिल कर दंगाइयों की भीड़ को भगा दिया। इतने में ही पुलिस भी पहुँच गई। पुलिस ने यह कहते हुए सब लोगों को अपने अपने घर जाने को कहा और विश्वस्त किया कि वे वहाँ पर हैं और हम लोगों को चिंता करने की कोई बात नहीं। इस पर हम सब लोग अपने अपने घरों को लौट आए। इसके कोई आधा घण्टे बाद एक भीड़ ट्रक में भर कर आ गई। यह सब लोग यहाँ का स्थानीय न होकर अनजाने से थे। पुलिस जा चुकी थी। थाणे में फोन किया, लेकिन पुलिस न आई। पहले हमें लगा कि ये लोग तो बस हम से लूट-खसूट करने ही आए हैं। वह सभी लोग तलवारों, राड्डों और कैमीकल हथियारों से लैस थे।

उन लोगों ने पहले हम से कहा कि उनको तो सिर्फ़ हमारा सामान चाहिए, और हम उन्हें अपने-अपने सभी हथियार दे दें। वो लोग लगभग 40-40 की भीड़ बना के सभी का घरों के आगे खड़ी हो गए। वो ऊँची-ऊँची आवाज़ में चिल्ला रहे थे कि आपने हमारी माँ को मारा है, हम आपको भी न छोड़ेंगे। उन लोगों का पास जो कैमीकल था, वो इतना शक्तिशाली था कि उसकी आग बुझाने पर भी न बुझती थी। उन्होंने कईयों को ज़िंदा ही जला दिया। उन जलने वालों की चीखें इतनी भयाक्रांत करने वाली थीं कि उन्हें सुन कर धरती का सीना भी छलनी हो जाए। बाकी लोगों को उन्होंने हथियारों से मार दिया। उन निर्दयी ज़ालिमों ने मेरी आँखों का सामने ही मेरे वीर जी, पिता जी और मौसा जी (आयु 55 वर्ष) को भी मार डाला। हम कुछ भी न कर सके। वह हमारे ऊपर जुल्म का चरम था। हम अपनी अपनी जान बचाने के लिए अपने घरों की छत्तों के रास्ते से पड़ोसियों के घरों को चले गए। हमारे पड़ोसी सदाराम माही जी और महिंद्र सिँह जी, जो आर.एस.एस. के कार्यकर्ता थे, ने हमारी बहुत सहायता की। श्री महिंद्र सिँह जी की आनंद परबत इलाके में एक फैक्ट्री थी। हम 02 रात उनके घर रहे। ...लेकिन हम उनके घर में भी सुरक्षित न थे। हमारे साथ साथ उनकी जान को भी खतरा था। दंगा पीड़ितों के लिए गुरुद्वारा साहेब में कैम्प लगा हुआ था इसलिए हम सब लोग भी वहीं चले गए। गुरुद्वारा साहेब मिलिट्री की सुरक्षा में था। यहाँ पर शिविर में हम 06 महीने तक रहे।

इसके बाद हमें एक मकान आबंटित हो गया और हम वहां चले गए, जीवन नए सिरे से आरम्भ किया। इस पर भी जब कभी भी अतीत की ओर ध्यान जाता है तो सोचता हूँ कि यदि राणा जी और सदाराम माही जी से हमें सहायता न मिलती तो शायद हमारा अंजाम भी दूसरों जैसा ही होता। उस कठिन दौर में उनके द्वारा की गई सहायता मेरे जीवन के लिए सदैव ही सकारात्मक व प्रेरक रही है। उनकी नेकदिली की सुखमय स्मृतियां हमारे मनों में सदैव सजीव रहेंगी।

दहलीज पर खड़े रहनुमा

स. राजिंद्र सिंह

मध्यप्रदेश से अलग होकर बने नये प्रांत छत्तीसगढ़ के बारे में कहा जाता है कि यह कभी कौशल प्रदेश था और भगवान श्री राम जी की माता श्री कौशल्या जी यहीं, इसी प्रदेश से थे। यह कभी कलिंग प्रदेश के चेदीवंश राज्य का भाग भी रहा। शायद यहीं से इसका नाम छत्तीसगढ़ हुआ माना जाता है। परंतु इतने समृद्ध इतिहास के बावजूद सन् 1984 की सिक्ख नस्लकुशी ने इस पर एक काला धब्बा अवश्य लगा दिया है और उस काले समय की परछाइयां मापने के लिए हम छत्तीसगढ़ की राजधानी रायगढ़ पहुँचे। जहाँ हमारी भेंट उस समय के भुकतभोगी सरदार राजिंद्र सिंह जी से हुई। 58 वर्षीय राजिंद्र सिंह जी आजकल रायपुर में रहते हैं। उनके दो बच्चे, एक लड़का और एक लड़की हैं जो उच्च शिक्षा प्राप्त कर एक अच्छा जीवनयापन कर रहे हैं। अपने उन दिनों के अतीत पर दृष्टिपात करते हुए श्री राजिंद्र सिंह जी बताते हैं कि... पहले हम झारखण्ड में रहते थे और सन् 1983 में हम सपरिवार रायपुर आ गए। 1984 के सिक्ख कत्ले-आम के समय मैं लगभग 22 वर्ष का था और रायपुर के

डगनिया मोहल्ले में किराये के मकान में सपरिवार रह रहा था। डाक्टर शिव गोविंद शर्मा जी हमारे मकान मालिक थे। वह अपने घर के बाहर ही बनी एक दुकान में अपनी प्रेक्टिस किया करते थे। उस इलाके में लोग उनका बहुत आदर सत्कार करते थे। उन दिनों मैं रायपुर में ही अपने घर से कुछ दूरी पर ही ''नैशनल साइकिल एण्ड स्कूटर पार्टस'' के नाम से दुकान किया करता था। जीवन बड़े आनन्द से बहुत बढ़िया ढंग से चल रहा था। धीरे धीरे, कुछ ही समय में मोहल्ले वालों से काफ़ी परिचय हो गया था। डाक्टर शिव गोविंद जी के परिवार से भी काफ़ी घनिष्ठ सम्बन्ध बन गए थे। घर के निकट ही गुरूद्वारा साहेब था, जहाँ हम सब बिना किसी भेद-भाव से नतम्स्तक हुआ करते थे, जो आज भी बदस्तूर जारी है।

जीवन में कभी कोई उथल-पुथल भी होगी, इसका सपने में भी कभी कोई अंदेशा न था। 31 अकतूबर 1984 के दिन लगभग 12 बजे शहर में हलकी हलकी सी हलचल शुरू हो गई। यह खबर आग की भांति फैल गई कि सिखों ने श्रीमती इंदिरागांधी की हत्या कर दी है। मेरे पड़ोसी डा. चौहान और दूसरे लोग मेरे पास आए और मुझे कहा, ''सरदार जी, आप घर चले जाओ, हालात ठीक नहीं लग रहे हैं।'' ...और उनके सुझाव के अनुसार मैं घर चला आया। घर आते ही मैंने अपने दरवाज़े की चिटखनी बंद कर ली। वह चिटखनी बड़ी मुश्किल से बंद होती थी, और कभी-कभी तो बंद होती भी न थी लेकिन उस दिन एक ही बार कोशिश करने पर बंद हो गई। कोई ज़्यादा समय न बीता था कि बाहर से शोर-शराबे की आवाज़ें आने लगीं। अंदर से झांक कर देखा तो बाहर का दृश्य बहुत ही डरावना था।

वह आवाज़ें हमारे घर के आगे से ही आ रही थीं। भीड़ के रूप में वो बहुत से लोग हमारे घर के मुख्य द्वार पर ही खड़े थे। माहौल एकदम से दहशत भरा हो गया। वो लोग बड़े गुस्से में भड़काऊ नारे लगा रहे थे। दंगाइयों की उत्तेजित कर देने वाली आवाज़ें, दिल को कम्पा देने वाले नारे आज भी हमारे मनों पर स्थायी तौर पर बैठे हुए हैं। तेल डालो, तेल डालो, आग लगा दो, मार डालो सरदारों को... बस यही भीड़ का फरमान था। और उस फरमान पर कोई अपील और दलील सुनने के लिए वहाँ न तो कोई पुलिस थी, न ही कोई सरकार और

न ही कोई न्यायाधीश। हमारे और मौत के बीच बस कोई फासला था तो वह था घर का लकड़ी का दरवाज़ा। तोड़ो, तोड़ो के नारों के साथ दंगाई घर के दरवाज़े को धक्के मारने लगे। हम भी पूरा परिवार मिलकर अपने पूरे दम से उस दरवाज़े को टूटने से बचाने लगे। अब इसके अलावा बच जाने का और कोई दूसरा उपाय भी न था और न ही कोई दूसरी आशा ही थी। बस हमारी समूची जद्दो-जहद शायद मौत को कुछ पलों तक टालने मात्र के लिए ही थी।

इतने में ही हमारे मोहल्ले के लोग, डा. शिव गोविंद जी, भीष्म लाल ताम्रकर जी, जो आर.एस.एस. के प्रचारक थे, भी अपने साथियों सहित इकट्ठे होकर वहाँ आ गए। उन्होंने अपने तर्कों से और दलीलबाज़ी कर दंगाइयों की उस भीड़ पर रौब डालते हुए उसे वहाँ से भगा दिया। उन्होंने इस समूची घटना की सूचना पुलिस को भी दे दी। हम निराश हो चुके, लाचार लोगों के लिए उस समय वास्तव में ही हमारी साक्षात मौत हमारी दहलीज से वापस लौट गई थी। यह लोग हमारी ढाल बन कर खड़े रहे, हमारे लिए अपने साथ का विश्वास दिलाते रहे। उन दंगाइयों की भीड़ उस समय तो ताम्रकर जी, डाक्टर शिव गोविंद जी और मोहल्ले वालों के डर से चली गई लेकिन उस रात ऐसे दंगाइयों ने शहर रायपुर भर में सिक्खों की लगभग 157 दुकानें लूट लीं, जला डालीं। इनमें मेरी दुकान भी एक थी। उस समय पुलिस प्रशासन का अंधा-बहरा हो जाना ही उस भीड़ को मौन समर्थन के समान था। अगले दिन नवभारत टाईम्ज़ की हेडलाईन भी यही थी-''पंजाब का बूट, दत्ता का सूट, लूट सके तो लूट, प्रशासन की छूट'' (यह सब रायपुर में पंजाबियों की प्रसिद्ध दुकानों के नाम थे)। हमारे मनों में इस दौरान मौत सरीखी चुप्पी थी। इतना सब कुछ हो जाने पर भी मन में स्वाभाविक अकेलापन न था। इस पर भी तब यह न लग रहा था कि हमारा कोई न है इस दुनिया में, हम अकेले हैं। इस पर अब भरोसा हो गया था, अपनेपन का अहसास हो गया था कि कैसे ताम्रकर जी, डा. शिव गोविंद जैसे भगवान के बंदों ने उस कठिनाई के दौर में हमारी ढाल बन कर हमारी आसन्न मौत का मुँह मोड़ दिया। उस दौर में यही सब हमारे रहनुमा बने। हमारा अपना तो सब कुछ जल कर राख हो चुका था। जिस जीवन को झारखण्ड से रायपुर आ कर शुरू किया था, वह जीवन फिर वहीं से शुरू करने के लिए मुँह

बाय खड़ा था। उस रात केवल हमारी दुकान ही जल के राख न हुई अपितु हमारी चैन, हमारा सुकून भी जल कर राख हो गए थे। दंगाई भीड़ हमारा सब कुछ लूट कर ले गई, इस पर भी जो कुछ भी बाकी बचा रह गया था, उसे जलाकर राख कर गई थी। लेकिन वह भीड़ जो न ले जा सकी थी..... वो था हमारा भाईचारा, मेरे और मेरे परिवार की हिम्मत, साहस।

हम पंजाब को लौट सकते थे लेकिन नहीं लौटे, अपितु हमने रायपुर में रह कर ही फिर से अपनी आगामी यात्रा आरम्भ की। यह यात्रा उसी भरोसे पर आरम्भ की जो ताम्रकर जी ने और डा. शिव गोविंद जैसे रहबरों ने हमारे मनों में पैदा किया। यही हमारी जीत थी। हम फिर से अपने पाँवों पर खड़े हो गए। आज मेरा टूर और ट्रेवल का कारोबार है। वाहेगुरु जी की कृपा चहुँ ओर बरस रही है। सब कुछ समाप्त हो जाने के बाद भी उसी रायपुर की धरा में हमारी आशाओं और उम्मीदों के बीज अंकुरित हुए। हमने श्रम किया, आगे बढ़े, लेकिन वाहेगुरु जी की कृपा से किसी के आगे हमने झोली न फैलाई। इस पर भी यह सत्य ही रहेगा कि यदि उस कठिन दौर में किसी ने उस पौधे को सींचा, उसके रक्षा कवच बने, वे थे ताम्रकर जी और डा. शिव गोविंद जी जैसे आर.एस.एस. के नेक इन्सान। भरी सर्द रात में भी जिन के प्यार और विश्वास की गर्मी के ताप का आनंद लेते हुए हम आगे ही आगे लम्बी छलांग लगाते रहे। और इस घटना ने मेरे मन पर ऐसी गहरी छाप डाली कि मैंने निर्णय कर लिया कि मैं भी इस संस्था से जुड़ूँगा और इन्सानियत, समाज और भाईचारे का रक्षक बनूँगा। ...और फिर मैं संघ से जुड़ गया। आज जब मैं पीछे की ओर मुड़ कर देखता हूँ तो अपने फैसले पर गर्व अनुभव करता हूँ। मैं आभारी हूँ संघ कार्यकर्ताओं के उस जज़्बे का, जो मेरी समाज सेवी और रचनात्मक सोच के लिए प्रेरणा बना।

जिसे शत्रु समझा, वही मित्र निकला

स. तरलोचन सिंह

सरदार तरलोचन सिंह जी गिल्ल आजकल माडल कालोनी, दुसांझ रोड, मोगा में रहते हैं। आज उनका एक अच्छा भला प्रसन्नचित परिवार तथा अच्छा भला कारोबार है। गिल्ल जी की आयु इस समय 60 वर्ष है और 1984 के उस सिक्ख विरोधी दंगों के समय में वह मुश्किल से 24 वर्ष के थे। 31 अक्तूबर 1984 को प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी की हत्या के बाद आरम्भ हुई उस सिख नस्लकुशी को गिल्ल साहेब ने बस कुछ गज़ की दूरी से अपनी आँखों से प्रत्यक्ष देखा है। उस समय सरदार तरलोचन सिंघ गिल्ल मोगा से 07 किलोमीटर की दूरी पर गाँव घल्ल कलां में रहते थे।

आप उस समय ट्रांसपोर्ट का कार्य करते थे। उनका अपना निजी ट्रक था और उसी से अपनी रोज़ी-रोटी कमाने का लिए वह पंजाब से बाहर दूसरे प्रांतों में जाया करते थे। समय का चक्र ऐसा चला कि 30 अकतूबर 1984 को उन्होंने मोगा से अपनी गाड़ी में सामान लादा और उस सामान को लेकर दिल्ली की ओर चल निकले थे। लगभग 34-35 वर्ष पीछे की ओर झांक कर देखते हुए वे भावुक हो जाते हैं। स. तरलोचन सिंह बताते हैं कि पहले की भांति ही यह एक रुटीन यात्रा थी। मन या बाहरी माहौल में किसी भी प्रकार की, किसी अनहोनी की आशंका भी न थी। मैं 31 अकतूबर को दिल्ली में अपनी ट्रांस्पोर्ट पहुँचा और कुछ ही देरी में मेरी गाड़ी अनलोड हो गई।

गाड़ी खाली होने के बाद ट्रांसपोर्ट वालों ने मुझे बताया कि वे कल फिर मेरे गाड़ी में सामान की लदाई करेंगे और इसके बाद हम वापस पंजाब को लौटेंगे। इस कारण उस दिन तो हमारी गाड़ी में सामान लादा न जा सका। उनको सत्य वचन कह कर मैं और मेरे साथ पंजाबी गाड़ी चालक वहीं रुक गए। हम लगभग 40-50 ट्रकों के मालिक और चालक थे और सब केशधारी

सिक्ख थे। लेकिन जीवन ने हमें अभी कुछ और ही दिखाना था, हमारे चिंतन और कल्पनाओं से भी दूर की बात।

उसी दिन, 31 अकतूबर को दिल्ली में प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी की हत्या हो गई। हम वहीं रुके रहे। शाम का धुंधलका होते होते हमें दूर कहीं धुआँ उठता दिखाई दिया, कहीं कहीं तो आग भी दृखाई दे रही थी। रात होते होते शोर-शराबे की आवाज़ें भी सुनाई पड़ने लगीं। हमें पता ही न चल रहा था कि आखिर हो क्या रहा है ? लेकिन मनों में एक प्रकार के भय की दस्तक अवश्य हो रही थी। जैसे- कैसे रात्रि काटी, भोर होते ही हम अपनी ट्रांस्पोर्ट के बाहर खड़े थे तो इतने में कुछ गैर केशधारी लोग हमारे पास से निकले। वह हमें देखकर कहने लगे, ''सरदार जी, आप यहाँ बाहर खड़े हो, उधर लोग सिखों को मार रहे हैं। आप कहीं छिप जाइए।'' जैसे ही हम ने यह सुना, हम भयभीत हो गए। माहौल एकदम दहशत भरा हो गया। हम सभी चुप चाप ट्रांस्पोर्ट के अंदर चले गए, जहां ड्राइवर लोगों के रहने के लिए कमरे बने हुए थे और उनके ऊपर बने चौबारे में चले गए। दूसरे शहर में अपनों से दूर भय के माहौल में, वह दृश्य बहुत भयानक था। जैसे तैसे 01 नवम्बर का दिन बीता लेकिन दूसरे दिन भोर में लगभग 03 बजे के लगभग 4-500 लोगों का एक हजूम वहाँ आ गया। आते ही उन्होंने पंजाब नम्बर वाली गाड़ियों को आग लगाना शुरू कर दिया। हम चौबारे पर खड़े-खड़े यह सब देख रहे थे। देखते ही देखते वहाँ सब ओर बड़ी आग की लपटें उठने लगीं, वहाँ खड़े हमारे सभी ट्रक आग से राख बन रहे थे। जब मैंने खुद अपने ही ट्रक को धू-धू कर जलते हुए देखा तो मन बैठ सा गया। अपनी जिस गाड़ी को मैं बहुत सम्भाल सम्भाल कर रखता था, आज मेरी आँखों के सामने ही लोग उसे जला रहे थे और वह धू-धू कर जल रही थी। जब यह सब देखा न गया तो गुस्से में हमने शोर मचाना आरम्भ कर दिया। हमें देखते ही वह बड़ी सारी भीड़ हमारी ओर भागने लगी। अब मौत हमारे सामने थी। इस पर हम सब ने सोचा कि जब मरना ही है तो लड़ कर मरेंगे। तब हम सब लोगों ने उस चौबारे की मुंडेर की ईटें उखाड़ लीं और भीड़ की ओर फेंकने लगे। अब दोनों ओर से ईट-पत्थर चल रहे थे। भीड़ के ललकारे और नारे दिल दहला देने वाले थे। ''खून का बदला खून'', ''सरदारों

को मार दो''... आज भी मेरे कानों में गूंजते हैं। जैसा कि मैंने बताया कि हमने भीड़ को अपने निकट न आने दिया और वह उन्मादी भीड़ अपना वश न चलता देख वापस लौट गई। परंतु उस भीड़ की दहशत बनी रही। अब वह पूरा इलाका शमशान की भांति दिखाई देता था। उसके दूसरे दिन भी हमारे ऊपर 2-3 बार हमला हुआ।

हमने छत्त पर लगी टाइलें भी उखाड़ लीं और आस पास की टूटी फूटी ईंटें इकट्ठी करके मुकाबला करते रहे। अधजले ट्रकों पर मशालें लेकर चढ़ी भीड़ हमसे गाली-गलोच कर हमें डराती रही। गुण्डागर्दी का ऐसा नंगा नाच चलता रहा। वहाँ कानून और पुलिस नाम की कोई चीज़ न थी। हर ओर रोंगटे खड़े कर देने वाली चीखें, आगज़नी, दहशत हमारे दिलों को कचोटती रही। वाहेगुरू, वाहेगुरू करते हम आशाहीन हो मौत से लड़ते रहे। तब हमें लगता था कि अब जीते जी हम वापस पंजाब न लौट सकेंगे। हमारी मौत जैसे बस अब अपने समय की प्रतीक्षा ही कर रही थी। हम तीन दिन वहाँ भूखे प्यासे बैठे रहे। जीवन के लिए संघर्ष करते रहे। कोई भी हमारी सुध लेने न आया। शहर का शोर हमें और भी भयभीत कर रहा था। ठीक चौथे दिन एक मेटाडोर हमारी ट्रांस्पोर्ट के पास आकर रुकी। उसमें से कुछ लोग उतरे, जिन्होंने खाकी नेकरें, सफेद कमीज़ें और काली टोपियां पहनी हुई थीं। उन सब लोगों ने हांथों में लाठियां पकड़ी हुई थीं। हम सभी चौकस हो गए और हाथों में ईटों के टुकड़े पकड़ लिए। जैसे ही वो लोग हमारे निकट आए, हम उनका ऊपर ईंटें बरसाने लगे। हमारे वार से बचते हुए उन्होंने हमें दूर से ही कहा कि हम घबराएं नहीं, हम आपकी सहायता के लिए ही आए हैं। हम आपके लिए रोटी-पानी ले के आए हैं। आप चिंता न करो, आपको हमसे कोई खतरा नहीं है। हम आर.एस.एस. वाले हैं और आपको बचाने के लिए ही यहाँ आए हैं। उन दिनों पंजाब के हालात भी बहुत खराब चल रहे थे। हमने उपर्युकत संस्था का नाम सुना हुआ था और हम भी दूसरों की तरह आर.एस.एस. को सिक्खों का दुश्मन मानते थे। इसलिए उनके प्रति हमारे मनों में लेशमात्र भी विश्वास न था।

लेकिन वो लोग अपनी बात पर अड़े रहे और हमें हमारे हमदर्द होने का भरोसा दिलाते रहे। उन्होंने काफ़ी देर तक हमारी मिन्नत, निवेदन करके हमें छत्त

से नीचे उतारा। उन्होंने कहा कि आप लोग कई दिनों से भूखे प्यासे दिखाई देते हो और इसलिए पहले खाना खा लो। लेकिन हम तो इतने दिनों से जीवन और मौत के बीच की खेल खेल रहे थे इसलिए रोटी का निवाला भी कैसे मुँह से निगला जाता ? हमने कहा कि हमारे साथ के कई मारे गए, ड्राइवर मारे गए, हमारी गाड़ियों को आग लगा दी गई। रोटी का निवाला हमसे निगला न जाता। हाँ, यदि आप हमें बचा कर गुरूद्वारा श्री बंगला साहेब पहुँचा दो। उन भाइयों ने हमें बड़े प्यार और सम्मान से गुरूद्वारा श्री बंगला साहेब पहुँचाया। वहाँ और भी बहुत सारे सिख भाई थे।

जहाँ हम सब लोग सोच रहे थे कि अब हम जीवित नहीं रहेंगे और न ही फिर से लौट कर पंजाब जा सकेंगे। लेकिन गुरूघर पहुँच कर हमारी जान में जान आई और आशा की एक किरण दिखाई दी। और कुछ दिनों बाद जब माहौल शांत हुआ तो गुरूद्वारा प्रबन्धक समिति ने रेलगाड़ी में बैठाकर हमें वापस पंजाब भेज दिया। मैं आज भी सोचता हूँ कि यदि उन भाइयों की सहायता न मिलती तो शायद हमारे माता-पिता, बहन-भाई सब हमको कभी न देख पाते।

उस काले दौर में इन्सानियत का बेरहम कत्ले-आम हुआ, लेकिन कुछ लोग ऐसे भी वहाँ मौजूद रहे जो तूफ़ान में से किश्ती निकालने की कोशिश कर रहे थे और वह भी नि:स्वार्थ भाव से। इन्सानियत और भाइचारे की रक्षा के लिए वह डटे रहे और मेरे जैसे कई लोगों के लिए प्रेरणास्रोत बने।

दुकान लूटने से बचाई

श्री तिलक राज चावला

श्री तिलक राज चावला जी हिमाचल प्रदेश के कुल्लू शहर के निवासी हैं। इनका जन्म तो यहीं का है लेकिन यह पीछे से पाकिस्तान से हैं। सदियों से ही कुल्लू शहर का दशहरा देश भर में प्रसिद्ध रहा है।

प्रतिवर्ष दशहरे के त्योहार पर यहाँ एक बड़ा मेला लगता है, जिस देखने के लिए दूर-दूर से लोग यहाँ आते हैं। श्री तिलक राज चावला के पिता जी भी कुल्लू के मेला में व्यापार करने आया करते थे। फिर देश का विभाजन हो गया और यह परिवार भी कुल्लू आ गया और यहीं स्थायी तौर पर बस गया। तिलक राज जी 06 भाई -बहनों में सब से छोटे हैं और कुल्लू में ही आजकल कपड़े और मोबाइल का कारोबार करते हैं। कुल्लू के ही अखाड़ा बाज़ार में इनकी दुकान है। माता-पिता अब परलोक सिधार चुके हैं।

1984 के दौर को याद करते हुए वे बताते हैं कि उस समय मैं बी.एस.सी. का विद्यार्थी था। उस समय लोगों के पास टीवी कम ही हुआ करते थे और श्रीमती इंदिरा गांधी की हत्या की खबर सबने रेडियो पर ही सुनी। इसके बाद खबर आई कि इंदिरा गांधी को उनके सुरक्षाकर्मियों ने ही मारा है जो कि सरदार थे। इसके बाद तो सिक्खों के विरुद्ध हिंसा आरम्भ हो गई। वे बताते हैं कि मैं उस दिन अपने किसी दोस्त की शादी के समारोह में गया हुआ था। लगभग 04 बजे मैं अपने दोस्त, जो केशधारी था और स्कूटर चला रहा था। हम ने देखा कि कुछ गुंडा किस्म के लोग भीड़ के रूप में खड़े थे। हमारी पहचान आते ही वो लोग हम पर पत्थरों से हमला करने लगे। हम गुरूद्वारा को मानते हैं इसलिए यहाँ के लोग हमें भी सिख ही मानते हैं। हम खराब हुए माहौल को भांप गए और कहीं रुकने के स्थान पर बड़ी मुश्किल से अपनी जान बचाकर घर आ गए। सिखों पर हमले शुरू हो गए थे। फिर उन दंगाइयों ने सिक्खों की दुकानों

को निशाना बनाना शुरू कर दिया।

दुकानों से सामान लूट-लूट कर ले जाने लगे। इतने में राजीव जी, जो आर.एस.एस. के कार्यकर्ता हैं, हमारे पास आए। उन्होंने हमें कहा कि हम बिल्कुल ही चिंता न करें, वे हमारे साथ हैं। लेकिन हमें अपने साथ-साथ हमारी दुकान को भी खतरा था। इसलिए राजीव जी से दुकान का सामान बचाने के लिए सहायता मांगी। हमारी दुकान के पीछे एक छोटा सा दरवाज़ा था। राजीव जी की सहायता से हम पूरे परिवार के लोग दुकान में से सामान निकाल कर घर ले जाने लगे ताकि लूट की स्थिति में कुछ सामान तो बच जाए। भीड़ एक एक करके सिक्खों की दुकानें लूट रही थी। इससे पहले कि यह लुटेरी भीड़ हमारी दुकान तक पहुँचती, हम ने अपनी दुकान का काफ़ी सामान बचा लिया था। अब धीरे-धीरे हमारी दुकान की भी बारी आ गई, लेकिन हम राजीव जी की सहायता से काफ़ी सारा सामान बचा चुके थे। दंगाइयों ने हमारी दुकान को लूटने के लिए दुकान का शटर तोड़ दिया। क्योंकि हम बहुत सा सामान बचा चुके थे इसलिए काफ़ी हद तक हमारा बचाव हो गया था। उस कठिनाई के दौर में हमें केवल और केवल राजीव जी का ही सहारा था। बाद में शहर में कर्फ़्यु लग गया और आई.टी.बी.पी. ने शहर को अपने अधिकार में ले लिया। यह कर्फ़्यु 07 दिनों तक जारी रहा। मेरे पिता जी ने यह मंज़र पाकिस्तान बनने के बाद एक बार फिर से देखा था। कुछ दिनों बाद इस दंगे से हुई क्षति का अनुमान लगाने और उस क्षति की पूर्ति करने के लिए जिलाधीश जी आए। बहुत सारे लोगों ने वह नाममात्र की क्षतिपूर्ति ले ली लेकिन मेरे पिता जी ने यह राशि लेने से साफ़ इन्कार कर दिया। यहाँ तक कि उन्होंने दंगा पीड़ित होने का प्रमाण-पत्र लेने से भी इन्कार कर दिया। लेकिन इस घटना ने हमारे जीवन पर बहुत प्रभाव डाला। पिता जी ने एक भाई को हरियाणा भेज दिया क्योंकि कोई नहीं जानता था कि ऐसा माहौल कब तक जारी रहेगा। 1947 का उजाड़ (विस्थापन) तो पिता जी ने अपनी आँखों से देख ही रखा था। उन्हें अब भी समय और हालात पर कोई भरोसा न था। इसलिए ऐसी कठिन घड़ी के लिए सिर ढंकने के लिए कहीं पर तो कोई छत्त होनी ही चाहिए। इसलिए भाई को जाना पड़ा और मुझे उनकी दुकान सम्भालनी

पड़ी। इसी कारण मुझे अपनी शिक्षा भी छोड़नी पड़ी। यहीं पर ही बस न था। 1987 में भी फिर से ऐसे ही हालात बने। जुलाई-1987 में पंजाब-हरियाणा की सीमा पर खालिस्तानी आतंकवादियों ने 74 हिंदुओं को बस से उतार कर गोलियां मार कर मौत के घाट उतार दिया। इसके विरोध में फिर वही हालात बने। इस घटना की प्रतिक्रिया स्वरूप सिक्खों के विरुद्ध हिंसा हुई। बहनों-बेटियों का सम्मान भी सुरक्षित न रहा। फिर से हमें राजीव जी का साथ मिला। राजीव जी परिवार को अपने साथ घर ले गए और उतने दिन हमारी बहनें और माता जी उनके घर पर ही रहीं। उनके इस सहयोग से ही वह कठिन घड़ी भी कट गई अन्यथा तब भी जीवन कोई भरोसा न था। ऐसी कठिन परिस्थितियों में सहयोग के वे सुखद अनुभव सदैव याद रहेंगे।

हवाई फायर करके बचाया

डा. सुरिंद्र कुमार

किसी समय पंजाब का हिस्सा था लेकिन पंजाब विभाजन के बाद सिरसा हरियाणा प्रांत में आ गया। सिरसा में सिक्खों की काफ़ी आबादी थी। पुरानी कमेटी वाली गली में सरदार बलदेव सिंह और उनका बेटा हरनाम सिंह जूतों की दुकान करते थे। दोनों पिता-पुत्र केशधारी सिक्ख थे और अपने 10 नहुँ की किरत करके अपना जीवन-यापन कर रहे थे। उस मेहनत से वे चमड़े के जूतों का काम करते हुए एक सम्मानजनक जीवन जी रहे थे। लेकिन वर्तमान कभी-कभी ऐसा ज़ालिम हो जाता है कि इतिहास के शब्द भी खुद पर शर्म महसूस करते हैं। दुनिया की किसी भी मशीन को ठीक किया जा सकता है, नहरों के बहाव को मोड़ा जा सकता है, भूगोल को बदला जा सकता है, पर्वतों को हटाया जा सकता है, समुद्र को भी मथा जा सकता है।.... लेकिन जो बीत गया, निकल गया वह

लौट कर न आ सकता है और घड़ी की सुइयों को घुमा कर समय की भूलों को ठीक न किया जा सकता है और जीवन में कभी कभी ऐसा वक्त भी आता है जब न जीवन ऐसा रहता है और न ही दुनिया की सोच और नज़रिया। इन दोनों पिता-पुत्रों का साथ भी ऐसा ही कुछ हुआ। जिस दिन दिल्ली में प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी की हत्या हुई, उसी दिन दिल्ली में जली उस हत्या के बदले की आग सिरसा में भी फैल गई। पहली नवम्बर 1984 को प्रतिदिन की भांति दोनों (पिता-पुत्र) रोड़ी बाज़ार में अपनी दुकान पर ही थे। सिरसा में दंगाइयों की भीड़ जमा होने लगी। अधिकतर लोग लाठियों और गंडासियों से लैस थे।

बलदेव सिंह जी की दुकान के पास ही डा. सुरिंद्र कुमार मल्होत्रा, जो कि आँखों के डाक्टर हैं और वहीं अपनी प्रेक्टिस करते हैं, आर.एस.एस. के ज़िला के महामंत्री थे। डाक्टर जी उस घड़ी को याद करते हुए बताते हैं कि उस दिन अचानक ही उनको उस भीड़ का बलदेव सिंह जी की दुकान की ओर बढ़ने का पता चला। डाक्टर जी तुरंत ही उनकी दुकान पर गए और उन दोनों को ही अपने घर, जो दुकान के निकट ही था, ले आए। डाकटर जी ने उनको अपने घर में रखकर घर को ताला लगा दिया। इतने में भीड़ को भी यह जानकारी मिली और वह उनके घर के आगे पहुँच गई। अपनी संख्या और हथियारों के बल पर तथा प्रशासन की ओर से निर्भय भीड़ किसी भी सीमा तक जाने को तैयार थी। और अब भीड़ तथा उसके निशाने के बीच डाकटर जी ही खड़े थे। तैश में आई भीड़ को देखते ही डाकटर जी ने अपना लायसेंसी रिवालवर निकाल लिया जो कि उन्होंने अपनी सुरक्षा के लिए रखा हुआ था। बहुत ही तत्परता से उन्होंने हिम्मत से भीड़ को ललकारते हुए एक हवाई फायर कर दिया, और कहा कि इसके अंदर अभी भी 06 गोलियां और हैं। (उनका रिवालवर 07 गोलियों वाला था) पहले 06 लोगों को मारूंगा तब फिर अंदर जाऊँगा। तब क्या था, हवाई फायर होते ही भीड़ भाग खड़ी हुई। इस भीड़ में अधिकतर लोग जाने-पहचाने और बहुत से कांग्रेस के पदाधिकारी थे।

वह कठिन समय डाकटर साहेब की हिम्मत और दिलेरी के कारण ज़ुल्म के आगे खड़े हो जाने से टल गया और दोनों सिख बंधुओं की रक्षा हो सकी। कुछ दिनों के बाद जब माहौल ठण्डा हुआ तो सरदार बलदेव सिंह जी का

परिवार अपने पैरों पर खड़ा होने की स्थिति में आ गया। परंतु मौत के मुँह से बाहर निकल आने का अहसास अलग ही होता है और वह जब भी याद आता है, शरीर के रोंगटे खड़े हो जाते हैं। आज दोनों, स. बलदेव सिंह और उनके पुत्र हरनाम सिंह इस दुनिया से जा चुके हैं और डाक्टर जी भी अपने जीवन के अंतिम पड़ाव पर हैं। उनके बच्चे भी उनकी ही भांति डाक्टर हैं और अमेरिका में रहते हैं। अपना अंतिम समय लोगों के नि:शुल्क इलाज और दूसरी सेवा गतिविधियों में लगा कर वे जीवन सार्थक कर रहे हैं। सचमुच ही वह एक मील के पत्थर की भांति हैं जो कि इन्सानियत को रास्ता दिखाता है। डाकटर साहेब उन भले लोगों में से हैं, जिनकी बदौलत यह दुनिया टिकी हुई है। बुराई में भी एक अच्छाई तो अवश्य ही होती है जो अच्छाई को दुनिया के आगे प्रत्यक्ष करती है। अकतूबर-नवम्बर 1984 की उस बुराई ने भी ऐसे ही रहबरों को दुनिया के समक्ष प्रस्तुत किया।

दीवार बन खड़े संघी

हरियाणा प्रांत का रोहतक शहर भी उस 1984 के दर्द और ज़ुल्म का प्रत्यक्षदर्शी बना। सरदार मुकंद सिंह जी यूँ तो कलानौर के निकट डिगाणा गाँव के रहने वाले हैं लेकिन काफ़ी समय पहले वह सपरिवार रोहतक आ गए थे और यहीं बस गए। उनके परिवार ने 1984 की नसलकुशी की आँखों देखी तस्वीर यहीं पर देखी थी।

स. मुकंद सिंह

वह बताते हैं कि मेरे कई परिचितों से हुई दुर्घटनाओं की दुखद याद मुझे आज तक विचलित करती रही है। मुझे याद है कि पहली नवम्बर को सारा बाज़ार बन्द था। दंगाइयों की भीड़ ने चुन चुन कर सिखों की

बंद पड़ी दुकानों को अपना निशाना बनाना शुरू कर दिया। झज्जर रोड पर मेरे जानकारों की सरिया की 02 दुकानें थीं। सरकार की शह प्राप्त उन्मादी भीड़ ने वह दोनों लूट लीं। ऐसे ही रेलवे रोड पर एक कपड़े की और रेडीमेड कपड़ों की तीन दुकानें लूट ली गईं। दुकानों का नुकसान तो हुआ परंतु रोहतक में डाकटर मंगल सेन के नेतृत्व में लोगों ने एकता कर ली कि अब हम कुछ भी और न होने देंगे।

डाकटर मंगल सेन रा.स्व.संघ से जुड़े रहे और उस समय वह हरियाणा जनसंघ के शीर्ष नेता भी थे। और यह उसी पहल का परिणाम था कि यहाँ कोई जानी नुकसान न हुआ। इसी सामाजिक भाईचारे के कारण ही मेरा परिवार उस विकट परिस्थति से निकल सका और अकाल पुरख की कृपा सदका वहाँ कोई हादसा न हुआ।

मानवता के पहरेदार

सरदार खैबर सिंह जी तिलक नगर दिल्ली के निवासी हैं। सन् 1984 में वे आठवीं कक्षा में पढ़ते थे और उस समय उनकी आयु लगभग 14-15 वर्ष की रही होगी। परिवार में एक छोटा भाई, छोटी बहन, माता-पिता जी और दादा-दादी जी थे। सन 1984 का वह पुराना समय याद करते हुए वह बताते हैं कि उस दिन मुझे हल्का सा बुखार था जिस कारण मैं स्कूल न गया और घर पर ही था।

स. खैबर सिंह

मुझे अच्छी तरह याद है कि फिर मैं घर में ही मच्छरदानी की छड़ियां लेकर उनसे शरारतें करने लगा। शहर में शोर-शराबे की आवाज़ें आ रही थीं। इंदिरागांधी की मौत का हमें भी अफ़सोस था क्योंकि

सिख वोट सदैव ही कांग्रेस को ही जाती थीं। इसलिए हमें किसी प्रकार का डर न था। लेकिन कांग्रेस हमारे साथ ऐसा व्यवहार करेगी, यह भी तो हमने कभी सोचा न था। तब पता चला कि दंगाइयों की भीड़ हमारे इलाके की ओर बढ़ने लगी। हम सभी लोग तलवारों और अन्य हथियारों से लैस होकर गुरूद्वारा में इकट्ठे हो गए। हम भी तलवारें लिए पूरी तैयारी में बैठे थे कि यदि कोई हमारे ऊपर हमला करेगा तो हम भी अपना बचाव खुद करेंगे। इतने में ही पुलिस की गाड़ी आ गई। उन्होंने कहा कि हम अपने अपने घरों को चले जाएं क्योंकि हमें देखते ही भीड़ और भी भड़क जाएगी और फिर हमारे पास बचाव का कोई रास्ता न बचेगा। अब पुलिस हमें सुझाव दे रही थी तो हम भी उन की बातों को मानते हुए अपने अपने घरों को चले गए। जितनी देरी तक हम गुरूघर में थे उतनी देरी तक कोई हमला न हुआ। परंतु घर पहुँचते ही हमला आरम्भ हो गया। वह उन्मादी भीड़ धड़ा-धड़ पत्थरों की बौछार करने लगी। इसके बाद उसी भीड़ ने घरों को आग लगाना शुरू कर दिया। छोटा भाई और बहन, दादी जी के साथ मोहल्ले में ही कहीं गए हुए थे। मैं अपने घर की छत्त पर अपनी माता जी के साथ था। कुछ दूरी पर ही मुझे पिता जी आते दिखाई दिए।

मैं अपने घर की पिछली गली में उतर गया। मैंने देखा कि लोग बुरी तरह से मेरे पिता जी को मार रहे थे। पिता जी के सिर से लहू बह रहा था। मैंने उन लोगों के आगे मिन्नतें कीं कि वे मेरे पिता जी को न मारें। लेकिन उन लोगों ने मेरी एक न सुनी। उन्होंने मेरे सिर पर भी चोट लगाई जो कि बहुत गहरी थी तथा जिसके निशान आज भी मेरे सिर पर हैं। मेरे सिर पर कई चोटें लगीं। पिता जी ने मुझे वहां से भाग जाने को कहा। किसी तरह मैं वापस अपनी छत्त पर पहुंचा। सिर से खून बहुत निकल रहा था और मैं वहीं गिर गया। मम्मी जी ने मुझे गोद में ले लिया। अब भीड़ हमारे घर भी पहुँच गई। वो मुझे मारने के लिए आगे बढ़े। मेरी मम्मी ने उनसे बहुत मिन्नते कीं कि इसे मत मारो क्योंकि यह तो बच्चा है। इसके तो पहले से ही इतनी चोटें लगी हुई हैं। उन्होंने मुझे छोड़ दिया लेकिन हमारे घर को आग लगा दी जिसके ताप से घर की छत्त बहुत तप रही थी। अब वहां पर लेट जाना भी मुश्किल हो रहा था। धीरे धीरे मेरा खून बहना अपने आप ही बन्द हो गया था। मेरे मम्मी जी मुझे अपनी गोद में लिए ऐसे ही

रोते रहे। सायं के लगभग 06 बजे हमारे पड़ोसी हमारे घर आए और हमें अपने घर ले गए। महिंद्र सिंह राणा आर. एस.एस. के कार्यकर्ता थे और उनकी फैकट्री में खराद पर काम होता था। ज़्यादा खून बह जाने से मुझ से चला जाना भी मुश्किल था। वहाँ हमारी कालोनी में और भी अनेक लोग थे। इतने में मेरे दादी जी और बहन भाई भी लौट आए थे। इस प्रकार हमारा बिछुड़ा हुआ परिवार फिर से इकट्ठा हो गया लेकिन पिता जी का कुछ पता न लगा। ...और इसके बाद भी कभी उनका पता ही न चला। राणा जी ने मेरे इलाज के लिए डाकटर त्यागी को बुलाया, परंतु उन्होंने इलाज करने से मना कर दिया। हमारे घर से कुछ ही दूरी पर सी-ब्लाक में एक शर्मा जी रहते थे। वह मोहल्ले में टिंचर आयोडीन लेकर घूम रहे थे।

उन्होंने ही मेरे घावों पर दवाई लगाई। परंतु कमज़ोरी के कारण मेरा बाथ-रूम तक जाना भी कठिन था। टट्टी पेशाब के लिए भी मुझे उठा कर ले जाना होता था। इस पर राणा जी को भी धमकियां मिलनी शुरू हो गई कि यदि सिखों की सहायता की तो उन्हें जान से मार दिया जाएगा और उनका घर भी जला दिया जाएगा। हालात की गम्भीरता को समझते हुए राणा जी ने हम सब को निकटवर्ती गुज्जरों के एक गाँव में बात करके वहां के एक गुज्जर श्री राम शरण के घर भेज दिया। हम वहां पर तीन दिन रहे। तीन दिन के बाद सुबह सुबह गाँव में सेना के लोग आ गए और वो लोग हम सबको अपने साथ वजीराबाद में नानकसर गुरूद्वारा में ले गए जहां दंगा-पीड़ितों के लिए कैम्प लगा हुआ था। कुछ दिनों बाद दादी जी हमारे ताया-तायी जी के साथ उनके घर भजनपुरा में चले गए। मेरी चोटों को अभी तक कोई राहत न मिली थी। कैम्प में भी इलाज की कोई अच्छी सुविधा न थी। इसलिए मेरी मम्मी ने मुझे जहांगीराबाद में मौसी के घर भेज दिया जहां अगले 3-4 महीने तक मेरा इलाज चला। मेरे सिर की चोट काफ़ी गम्भीर थी और वहां ज़ख्म भरने में भी काफ़ी समय लगा। तीन-चार महीने उस घाव पर पट्टियां ही होती रहीं। इसके बाद मैं फिर से कैम्प में वापस आ गया। हम 06 महीने तक यहीं रहे क्योंकि सरकार की ओर से अभी तक दंगा-पीड़ितों को जो फलैट मिलने वाले थे, वे अभी तक आबंटित न हुए थे। इसके बाद आगे की पढ़ाई के लिए मेरी मम्मी ने

मुझे मेरे मामा के पास बठिण्डा के निकट मौड़ मण्डी में भेज दिया। मैंने 9वीं की परीक्षा वहीं से पास की और 1987 में फिर से दिल्ली आ गया। सन् 1988 में मुझे दंगा-पीड़ितों को राहत के कोटे से मुझे नौकरी मिल गई।मैं आज भी सरकारी कर्मचारी हूँ। वह दुष्कर समय तो किसी तरह से बीत गया लेकिन अपने पीछे कभी भी न मिटने वाले ज़ख्म, निशान छोड़ गया। फिर हम तीनों बहन-भाइयों की शादियां हुई और आज हम सब अपने अपने जीवन में प्रसन्नचित हैं। परंतु वह दर्दनाक हादसा एक ज़ख्म की भांति आज भी हमारे मनों में घर कर बैठा हुआ है। उन ज़ख्मों के लिए उस समय बस एक ही मरहम रही जो श्री महेंन्द्र सिंह राणा, राम शरण जी और उनके परिवारों ने राहत के रूप में हमें लगाई, वे देवदूत बन आए और इन लोगों ने हमें मौत के मुँह से बचाकर हमारी रक्षा की। यह वे लोग हैं जिन्होंने उस अंधेरे में अपनी मानवता रूपी मशालें जगाकर हमें रोशनी प्रदान की। पिता जी का इस तरह चले जाने का दर्द कभी भी भुलाया न जा सकता है। उस समय मन तो बुरी तरह से टूट चुका था, परंतु राणा जी ने हमारी फिर से हिम्मत बढ़ाई और हमें प्रेरणा दी।

दु:ख में सांझीदार

स. अमरजीत सिंह

किसी सज्जन से पता चला कि कुल्लू (हिमाचल प्रदेश) से 10 किलोमीटर दूरी पर भुंतर शहर के सरदार अमरजीत सिंह जी ने भी 1984 का काला दौर झेला है। उनका पता-ठिकाना लेने के बाद हमने भुंतर जाने का फैसला किया लेकिन कोविड के कारण लाक-डाउन लग गया। इस बीच कोई जानकारी न थी कि इस दौर में कितनी देर तक बंध कर रहना होगा। इसलिए अभी तो टेलीफोन के माध्यम से ही अमरजीत सिंह जी से सम्पर्क बनाने का सोचा।

फोन पर सम्पर्क करने पर दूसरी ओर से हैलो के साथ ही बज़ुर्गों को फतेह बुलाने के बाद बातचीत आरम्भ हुई। सरदार अमरजीत सिंह जी बताते हैं कि वे अब 80 वर्ष के ऊपर हैं और उनके परिवार में एक बेटा व दो बेटियां हैं। तीनों बच्चे शादीशुदा हैं और अच्छा जीवनयापन कर रहे हैं। इसके बाद एक बार फिर स्मृतियों की उड़ान हमें भारत विभाजन के दौर में सियालकोट ले गई। जी हाँ, एतिहासिक और प्रसिद्ध औद्योगिक शहर सियालकोट। तराना-ए-हिंद देने वाले अल्लामा इकबाल का शहर। 1947 में देश विभाजन, स्वतंत्रता से पहले उनका परिवार यहीं रहता था। अमरजीत सिंह जी के दादा जी की मौत यहीं हुई थी। विभाजन के समय वह मात्र 07 वर्ष के थे। गोरा अंग्रेज़ जाते जाते देश को दो टुकड़ों में बाँट गया था। नए बने पाकिस्तान में हिंदुओं और सिक्खों पर जानलेवा हमले आरम्भ हो चुके थे। भेड़-बकरियों की तरह उनका कत्ले-आम शुरू हो गया था। उनके कारोबार लूट लिए गए थे। औरतों का अपमान हुआ, कई महिलाओं को तो वो नए बने पाकिस्तानी लोग उठा कर ले गए थे। कुछ दरिंदों ने उनकी इज्जत लूटकर उन्हें मार डाला और कुछ बेटियों को उनके अपने माता-पिताओं ने खुद ही विष देकर मार डाला था। दरिंदगी के ऐसे हालात में वहाँ रहना बहुत कठिन हो गया था। इसलिए वहाँ के हिंदुओं और

सिक्खों ने भारत आने का निश्चय किया। मेरे पिताजी सरदार हरनाम सिंह, अपना सब कुछ वहीं छोड़ कर हम सबको साथ लेकर अमृतसर आ गए। इसके बाद कारोबार की खोज में हम हिमाचल प्रदेश के मण्डी और फिर कुल्लू पहुँचे। पिता जी ने यहाँ कपड़े का कारोबार आरम्भ किया और मैं भी उन्हीं के साथ इसी व्यवसाय में उनका साथ देने लगा। शादी के बाद वाहेगुरू की कृपा से मुझे दो बेटियां और एक बेटा मिले। हमारा परिवार एक अच्छा हँसता-खेलता परिवार था। कुल्लूमें हमारी दो दुकानें-एक कपड़े की और दूसरी शालों की थीं। इसके साथ ही शाल बनाने का हमारा अपना कारखाना भी था। 1947 के बाद फिर से नया जीवन आरम्भ करने के बाद हमारी ज़िंदगी बहुत ही खूबसूरत और आगे बढ़ रही थी। अच्छा परिवार और अच्छा कारोबार, अर्थात किसी भी वस्तु की कोई कमी न थी। परंतु इसके बाद वो हुआ, जो कभी सपने में भी सोचा न था।

31 अकतूबर 1984 को इंदिरा गांधी की हत्या हो गई। पूरे देश में शोक की लहर दौड़ गई। इसलिए कुल्लू के सभी दुकानदारों, लोगों ने 01 नवम्बर को बाज़ार, दुकानें बंद रखने का फैसला किया और एक श्रद्धांजली, शोकसभा करने के तौर पर सद्भावना बैठक करने का फैसला भी हुआ। हम भी सुबह सुबह प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी की आत्मिक शांति के लिए श्रद्धांजलि देने के लिए रखी सभा में भाग लेने के लिए पहुँचे। सुबह ही लगभग 10.30-11.00 बजे जब हम श्रद्धांजलि सभा से घरों को लौट रहे थे तो हमने देखा कि दंगाइयों की भीड़ हमारी दुकानों को लूट रही थी। उन्होंने हमारा कुछ भी न छोड़ा, वे हमारे कारखाने को भी पूरी तरह से लूट कर ले गए। हम पूरी तरह से बर्बाद हो गए। एक तरह से हम यहाँ खाली हाथ आए थे और फिर से खाली हाथ हो गए थे। उस समय हमारा कुल 07 लाख का नुकसान हुआ (जो उस समय बहुत बड़ा था)। अब हमारा जीवन भी सुरक्षित न था। सायंकाल को मनाली के विधायक श्री कुंज लाल ठाकुर हमारे घर आए। आजकल उनका बेटा गोबिंद सिँह ठाकुर मनाली का विधायक है। कुंजलाल जी आर.एस.एस. के प्रचारक भी रहे और बाद में भाजपा में आकर विधायक और हिमाचल प्रदेश के वनमंत्री भी रहे। उन्होंने हमें बहुत ढाढ़स बंधाई और हर प्रकार के सहयोग का आश्वासन

दिया। आर.एस.एस. के दूसरे लोग भी हमें मिलने आए, हमारे दु:ख में सहभागी हुए और उन्होंने हमें सांत्वना दी। जो भी माल, वस्तुएं वो दंगाई लूटकर ले गए थे, वो तो अब हमें मिलने वाली न थीं लेकिन इन लोगों ने हमें अपने साथ होने का, हर प्रकार की सहायता देने का भरोसा दिया। उस समय हिमाचल प्रदेश में वीरभद्र सिँह के नेतृत्व में कांग्रेस की सरकार थी। तात्कालिक सहायता का तौर पर हमें 10,000/- रु. मिले। लेकिन 07 लाख के नुकसान की तुलना में तो ये राशि नगण्य थी। फिर से काम कैसे शुरू करना था ? लोगों के बीच हमारी अच्छी पैठ थी, उनसे हमारा व्यवहार अच्छा था, जिस कारण से हमें लोगों से उधार मिलने लगा। हमने अपना कारोबार फिर से शुरू किया।

इसके बाद सरकार ने हमें 02 लाख रुपए की सहायता देने का वायदा किया और 5-6 साल बाद उसमें से भी केवल 01 लाख रुपए ही मिले। यही नहीं, उस राहत में से पहले दी गई तात्कालिक राहत के तौर पर मिले 10,000/- की भी कटौती कर ली गई। इस प्रकार हमारे परिवार ने दूसरी बार उजाड़ा देखा था। पिता जी ने तो अपनी आयु के अंतिम पड़ाव में यह विस्थापन दूसरी बार देखा था और वह कभी उस दर्द से बहर न आ सके । सन 1990 में माता जी इस दुनिया से चले गए और 1991 में पिता जी का साया भी हमारे ऊपर से उठ गया। अब मैं तो पूरी तरह से टूटकर बेसहारा हो गया था। यह तो इन लोगों का प्यार और साथ ही था कि जिसने मेरे परिवार को उठकर फिर से अपने पाँवों पर खड़ा होने की हिम्मत दी।

अतीत की परछाइयां

स. सवरण सिंह

लगभग 90 वर्ष के सरदार सवरण सिंह जी की ओर देखा तो वे रुआंसे से हो गए। मुझे समझ न आ रहा था कि उस बुजुर्ग को ढाढस कैसे बंधाऊँ ? मैं कुर्सी से उठकर उनके पास गया और उनके कंधे पर हाथ रख कर धीरे धीरे उनको हिम्मत बंधाई। थोड़ी देर की चुप्पी के बाद वह बोले, ''बेटा, 34 साल बाद मेरे घावों को फिर से कुरेदने आए हो या कि मेरे आँसुओं के उस सैलाब को, जो अंदर ही अंदर बह रहा था, यह जानने के लिए आए हो कि कहीं वह सूख तो नहीं गया।'' सवरण सिंह जी ने एक लम्बी साँस ली और बोले, ''यह कैसे हो सकता है कि मैंने अपने जवान बेटे, सतनाम को एक दिन भी याद न किया हो ?''

अब वो शायद अतीत की स्मृतियों के अंधेरे में खो से गए। सायं का अंधेरा हो चुका था और मैंने धीरे से प्रकाश के लिए ट्युब का बटन दबा दिया और प्रकाश होते ही वे वर्तमान में लौट आए। मैंने पूछा, ''दादा जी, आपका बेटा इस दुखदायी अंधड़ का शिकार जैसे हो गया ?'' इस पर उन्होंने अपने आँसू पोंछे और बताना आरम्भ किया, ''31 अकतूबर 1984 को सुबह सुबह लगभग 10 बजे देवबंद (उत्तरप्रदेश) में हमारी ज़िप बनाने वाली फैक्ट्री में यह दुखदायी खबर आग की भांति फैल गई कि किसी ने प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी को गोली मार दी है। जब मैंने यह सुना तो मन ही मन उस गोलियां चलाने वाले व्यक्ति को कोसा कि उसने ऐसा घटिया काम करके देश भर से बदनामी ले ली। तब तक मुझे यह जानकारी न थी कि उनको गोली मारने वाले सिख भाईचारे से थे और इंदिरा जी इस दुनिया को अलविदा कर चुकी थीं। लगभग एक घण्टे के बाद हमारे प्रबंधक ने फैक्ट्री के सभी वर्करों को बुलाया और कहा... आप सब लोग घर चले जाओ। इंदिरा गांधी जी को किसी ने मार दिया है और दो दिन बाद फैक्ट्री में आना।'' इसके बाद मैनेजर ने मुझे एक ओर ले जाकर

कहा, ''सवरण सिंह जी आप अपना ध्यान रखना क्योंकि इंदिरा गांधी के हत्यारे उनका 02 अंगरक्षक सरदार ही हैं और सभी स्थानों पर लोग अपना गुस्सा सिक्खों पर निकाल रहे हैं। आप तत्काल दिल्ली चले जाओ।'' मैं घबरा गया। मैंने उसे बताया कि दिल्ली के लिए इस समय कोई रेलगाड़ी भी नहीं है और यही नहीं, मेरा बेटा दूसरी जगह पर नौकरी करता है। इस पर मैनेजर ने मेरी बात काटकर मुझे कहा, ''सवरण सिंह जी आप तो निकल ही जाओ, बेटा भी आ जाएगा। मैंने कर्मचारियों को छुट्टी कर दी है। आप भागकर बस से चले जाओ।'' जाओ। मैंने अपनी जेब से छोटी डायरी निकाल कर सतनाम का नम्बर खोजकर मैनेजर के लैंडलाईन फोन से मिलाया। हैरानी की बात थी कि वह फोन पहली ही बार में मिल गया। जब मैंने उसे उस दिन की बात बताई तो उसने मुझे कहा कि वह सायं को 04 बजे की गाड़ी से निकल सकेगा। उसको निकलते निकलते देरी हो जाएगी। मैंने उसे सावधान रहने को कहा और जल्दी जल्दी बस की ओर भाग गया। संयोग से दिल्ली जाने वाली बस भी जाने के लिए तैयार खड़ी मिली और मैं वाहेगुरू का नाम जपते जपते बस में बैठ गया। रास्ते में 2-3 स्थानों पर वहिशी भीड़ ने बस को रोका लेकिन ड्राइवर ने तत्परता से बस को कच्चे रास्ते पर डाल कर हमें बचाया। मेरे साथ तीन-चार और सिख भाई भी थे। हम सब घबराए हुए थे लेकिन ड्राइवर और बस के क्न्डकटर ने हमें हिम्मत दी। दिल्ली से लगभग 25 किलोमीटर पहले सड़क पर 400-500 दंगाइयों की बड़ी भीड़ खड़ी थी। उन लोगों के हाथों में फरसे, तलवारें थीं। वो लोग नारा लगा रहे थे, ''खून का बदला खून से लेंगे।'' इससे पहले कि ड्राइवर बस को मोड़ लेता, भीड़ हमारी ओर दौड़ चुकी थी। बस के रुकते रुकते बस में अफरा-तफरी मच गई। इसी बीच मैं बस से उतर कर खेतों की ओर भाग निकला। लगभग 3-4 किलोमीटर भागकर मैंने पीछे मुड़कर देखा तो पाया कि मैं सड़क से काफ़ी दूर निकल आया था। घबराहट के मारे मेरा तो बहुत बुरा हाल था। इस पर मुझे वहाँ पर एक भगवान का बन्दा मिल गया। उसने मुझे कहा, ''सरदार जी आप चिंता न करो। मैं आप को सुरक्षित दिल्ली पहुँचाऊंगा।'' वह मुझे अपने घर ले गया और वहाँ उन्होंने मुझे चाय-पानी पिलाया और उसने मुझे अपनी मोटर-साइकिल पर बैठा दिल्ली की सड़क पर

चला गया। मैंने भी अपनी पगड़ी खोल कर मुँह को ढंक लिया। रास्ते भर में मैंने देखा कि स्थान स्थान पर लोगों की भीड़ सिखों को घेर घेर कर बड़ी बेरहमी से मार रही थी। मेरी अपनी आँखों के सामने अब अंधेरा छा रहा था। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि जैसे वह दिन मेरा अंतिम दिन हो। वाहेगुरू का नाम लेते हुए हम यमुना पार शाहदरा में फर्श बाज़ार मोहल्ले में अपने घर पहुँचे। हमारा घर पुरानी पुलिस चौकी के सामने है। उस समय सायं के 07 बज चुके थे। मेरी धर्मपत्नि और बेटियां बड़ी बेसब्री से मेरा इंतज़ार कर रही थीं। तभी मेरी धर्मपत्नि ने पूछा, ''सतनाम कहाँ है ?'' उसके ऐसा पूछते ही मैं तो एकदम से घबरा गया। तभी मैंने कहा, हाय ! सतनाम अभी तक नहीं पहुँचा ? अब तो मुझे उसकी चिंता हो गई। घबराहट के मारे घर में हम सबका बुरा हाल था। मेरे अपने पड़ोसी श्री विजय गुप्ता जी आर.एस.एस. के ज़िला स्तरीय अधिकारी थे। उन्होंने बताया कि वे अभी अभी बाज़ार होकर ही आए हैं। मैं उनको मिलने के लिए उनके कमरे में ही चला गया। मुझे देखते ही वो मुझे कहने लगे कि वो मेरी तरफ़ ही आ रहे थे। आप तो ठीक ठाक पहुँच गए ? यह सुनकर मेरी आँखों में आँसू आ गए। इस पर मैंने उन्हें बताया कि मैं तो यहाँ तक आ पहुँचा हूँ लेकिन सतनाम अभी तक नहीं आया है। ऐसा सुनकर वह भी गहन चिंता में पड़ गए। परंतु वह मुझे झूठी तसल्ली देने लगे। इस पर हमने सतनाम की फैकट्री में फोन किया तो उसके मालिक ने हमें बताया कि वह खुद ही सतनाम को बस में बैठाकर आए थे और अब तक तो उसे घर पहुँच ही जाना चाहिए था। जब वह 2-3 दिन तक घर न पहुँचा तो मैं समझ गया कि उसके साथ कोई अनहोनी, दुर्घटना हो गई है। शायद 7-8 नवम्बर की बात होगी कि सुबह लगभग 09 बजे विजय कुमार जी 10-12 लोगों के साथ, जो खाकी निक्कर और सफैद कमीज़ पहने थे, मेरे कमरे में आए। मैं एक बार फिर से घबरा गया। विजय कुमार ने मेरी ओर देखा तो उसकी आँखों से भी आँसू बह निकले। किसी अनहोनी की आशंका से घबराकर मैंने उनसे पूछा, ''गुप्ता जी, क्या बात है ?'' उन्होंने मुझे अपनी बाँहों में ले लिया और सुबकते हुए बोले, ''भाई साहेब, सतनाम की बाडी मिल गई है।'' यह सुनते ही मेरी धर्मपत्नी तो गश खाकर गिर गई। इस पर सब लोग उसे सम्भालने में लग गए। मैं खुद और मेरी

बेटियां भी रोने लगे। खैर, गुप्ता जी और उनके संघ वाले साथियों ने हमें शांत कराया और बताया कि दिल्ली में जहाँ पर भी संघ वालों का वश चला, वह दंगाइयों की वहिशी भीड़ से सिख भाइयों को बचा रहे हैं। वे उनकी दुकानों और घरों की रक्षा कर रहे हैं। विजय कुमार ने बताया कि वो खुद गाज़ियाबाद की ओर जा रहे थे कि एक पानी के नाला के पास भीड़ को देख कर रुक गए। निकट जाकर देखा तो भीड़ एक सिख नौजवान की लाश को घेर कर खड़ी थी, जिसे कुछ ही समय पहले पानी के नाला से निकाला गया था। लाश को देखते ही मैंने कहा कि यह तो हमारा सतनाम है। इस पर हम सभी फिर से रोने लग गए। इस पर विजय गुप्ता जी ने मुझे बाहर ले जाकर बताया कि सतनाम की लाश बुरी तरह से सड़-गल चुकी है। घर में लाए जाने की स्थिति में नहीं है। इसलिए इसे सीधा ही श्मशान घाट ले जाना ही ठीक रहेगा। विजय गुप्ता जी ने लेखक को बताया कि सवरण सिंह जी के छोटे बेटे को भी खोजा गया और हम सबने मिलजुल कर सतनाम सिंह की लाश का अंतिम संस्कार किया। सतनाम का बूढ़े माता-पिता और बहन-भाइयों का तो रो-रो कर बहुत बुरा हाल था और वो भी बहुत सहमे हुए थे। इस पर हम सब ने मिलकर उनका साहस बंधाया और उनसे कहा कि हम सब उनके साथ हैं। सवरण सिंह जी का यह इंटरव्यू लगभग दो साल पहले लिया गया था। उनकी धर्मपत्नि जी तो बेटे के गम में जल्दी ही चल बसीं थीं। उन्होंने अपनी बेटियों की शादियां भी कर दी थीं। बड़ी बेटी उत्तरप्रदेश के मोदीनगर में ब्याही गई थी। दूसरी बेटी दिल्ली में है। सतनाम से छोटा बेटा अलग होकर उत्तम नगर में रहता है। सवरण सिंह अकसर अपनी बेटी के घर मोदीनगर जाते रहते थे। खेद का विषय है कि लगभग 02 महीने पहले सरदार सवरण सिंह जी भी अकाल चलाणे कर गए। उनकी बड़ी बेटी का भी देहांत हो चुका है।

****